सद्गुरुवाणी



पालध्युपनामकश्रीहरिनारायणयोगिवर्य्यविरचिता

हिन्दीपद्यमयी

सद्गुरुवाणी

तस्याः

सपरिशिष्टप्रथमद्वितीयभागौ

काशीस्थधार्मिकप्रवरश्रेष्ठिराजश्रीगौरीशङ्करगोयनकासंस्कृत-
महाविद्यालयीयपुराणेतिहासाध्यापकश्रीराममूर्ति-
शास्त्रिपौराणिकेन गीर्वाणवाणीपद्यैरनूद्य
भूमिकादिभिः परिष्कृत्य संशोध्य
च प्राकाश्यं नीतौ ।

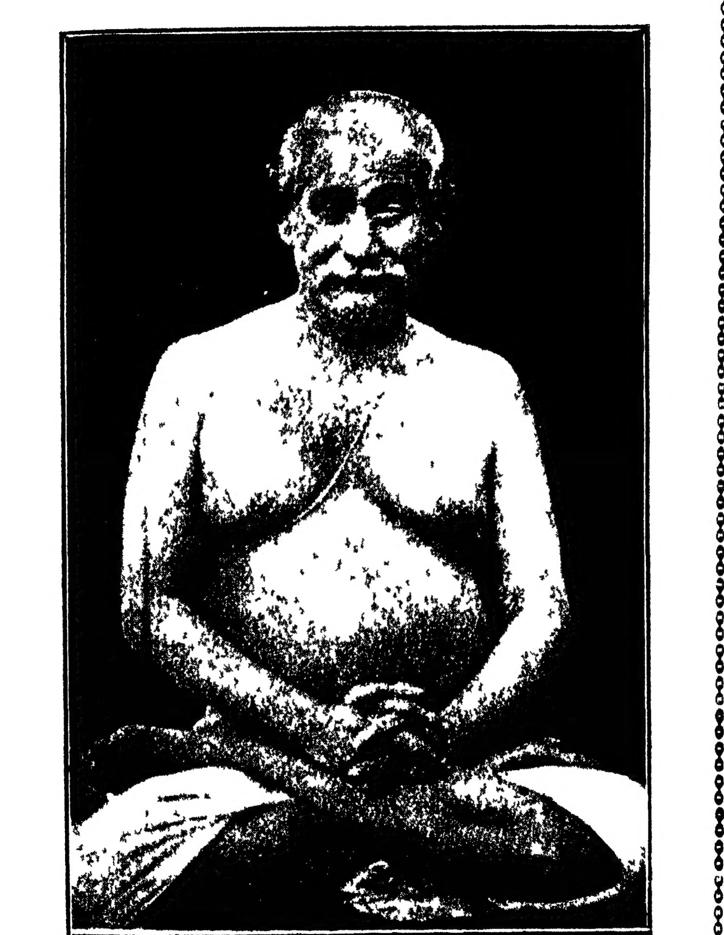
तौ च बालकृष्णशास्त्रिणा स्वकीये-ज्यौतिषप्रकाशाभिधे
मुद्रणालये मुद्रितौ ।

प्रथमावृत्तौ ५०० | सम्वत् १९९५ वि० | मूल्य रूप्यकमेकम्



गुरूणां गुरवो लाहिड्युपनामकाः (योगिराजाः)

श्रीश्यामाचरणमहोदयाः



वेदान्तोदितदिव्यतत्त्वपदवीमालक्ष्य दीक्षापथो येनापूर्वदया विधाय जनतामुद्धर्तुमाविष्कृतः ।
स्मारं स्मारमहर्निशं तमतुलख्यातिं गुरूणां गुरुं श्रीश्यामाचरणं नमामि शिरसा नम्रेण योगीश्वरम् ॥

पालध्युपनामका गुरुवर्य्याः (योगिवर्य्याः)

श्रीहरिनारायणमहोदयाः



श्रीश्यामाचरणाङ्घ्रिपङ्कजरसास्वादालिभूतान्तरं ब्रह्मानन्दरसावगर्भितगिरा संसारतापच्छिदम्
अज्ञानान्धतमिस्रनाशकतया गुर्वर्थभानं सदा वन्देऽहं नतमौलिना भुवि हरिं नारायणं योगिनम् ॥

॥ श्रीः ॥

वाराणसेयगवर्नमेण्टसंस्कृतकालेजभूतपूर्व-प्रिन्सिपलमहामहोपाध्यायश्रीगोपीनाथ-कविराज एम ए महोदयानां सम्मतिः-

लाहडीत्युपनामकानां ब्रह्मविद्वरिष्ठानां महायोगिनां श्रीमतां श्यामाचरणमहोदयानां योग्यशिष्यैः पालध्युपाह्वैः श्रीमद्भिर्हरिनारायणशर्म्मभिर्योगिवरैः सद्गुरुवाण्याख्यो हिन्दीभाषामयः कश्चित्पद्यग्रन्थो विरचितः स च तदन्तेवासिना पौराणिकेन विदुषा श्रीमता राममूर्तिशास्त्रिणा संस्कृतानुवादेन विषमस्थल टिप्पणीभिर्भूमिकया च विभूषितः प्राकाश्यं नीतः। चित्राणि च विविधानि प्रस्तुतविषयमर्मोद्घाटनानुकूलानि तत्र संयोजितानि।

"अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्"

इति परमधर्मस्यात्मसाक्षात्कारलक्षणस्य साधनत्वेन विनिर्दिष्टस्य योगस्य माहात्म्यातिशये सिद्धेऽपि साम्प्रतिके काले योगागमवेदान्तादिविविधशास्त्रग्रन्थानां मुद्रणसौलभ्यतः प्रचारभूयिष्ठत्वेऽपि वस्तुतो योगफलावाप्तिः कियतामेव महानुभावानां प्राक्तनपुण्यकर्मविपाकवशतः कदाचिद् घटते। सद्गुरोः कृपाकटाक्षसम्पात एव ब्रह्मद्वारोन्मीलने हेतुरिति यावद् दीक्षादिभिरध्वशुद्धिर्न जायते तावत्सद्दर्शनस्य तज्जन्याया भ्रमनिवृत्तेश्च संभावनैव नास्ति।

इन्द्रियादिवृत्तीनां बहिःप्रसरे निरुद्धे स्वान्तर्हृदये प्रद्योतमानः स्फुटः प्रज्ञालोकः सम्यक्तया वैखर्य्यां नावतरतीति सत्यम्। तादृश-प्रज्ञारत्नसम्पन्नानां तत्प्रचारे प्रायो रुचिविशेषोऽपि न संलक्ष्यत इत्यपि सत्यम्। तथापि प्रस्तुतग्रन्थकृद्भिः प्रार्थ्यमानशिष्यानुरोधेन जगत्कल्याणविधित्सया योगिजनसंवेदनीयां विचित्रां स्वात्मानुभूतिं भाषायां कथञ्चिदवतार्य चित्रसंयोजनेन तद्रहस्यव्याख्यान पुरःसरं तां यथासंभवं परिष्कृत्य च प्रेक्षावतां पुरस्ताद् ग्रन्थाकारेण तस्याः समुपस्थापनं कृतम्। महदिदं मोदस्थानं सताम्। स्थिरश्रद्धावता चेतसा परिशीलनेन बुद्धिमारूढा सा जिज्ञासोः शास्त्रसिद्धान्तपरिज्ञानेऽनुकूलतां विदध्यात्। ततश्च यथावसरं सद्गुरोः कृपामवाप्य तदुपदिष्टेन पथा चलन् शास्त्रतः समधिगतानि तत्त्वान्यपरोक्षरूपेण पश्यंश्च साधकः परां सिद्धिमवाप्य कृतकृत्यो भवेदिति दृढं विश्वसिमि। मूलाधारे जीवाख्यं स्वयम्भूलिङ्गं सार्धत्रिवलयाकारेण संवेष्ट्याष्टधा कुण्डलीकृतायाः सुषुम्नाविवरे प्रसुप्तायाः कुण्डलिनीशक्तेर्दीक्षाकृतः संचार एव प्राणापानयोः साम्यरूपत्वाद् योगपदव्यपदेश्यो मोक्षसाधन ज्ञानैकहेतुरिति प्रकृतग्रन्थे शक्तिसंचारतत्त्वमेव प्राधान्येन निरूपितम्। प्रसङ्गतश्च ब्रह्मजीवमायानां स्वरूपं, जीवत्वस्याविर्भावः, जीवस्य बन्धः, प्रपञ्चावतरणञ्च, सप्रयोजनदीक्षात्रयरहस्यं निखिलविकल्पोपशमरूपः परो मोक्षः—इत्येतान्यपि विषयजातानि संक्षेपेणालोचितानि। कथं परं ब्रह्मैव स्वाविद्यया जीवो भूत्वा संसरति पुनरपि स्वविद्यया तामविद्यां निरस्य नित्यस्वरूप-

स्थोऽपि स्वस्वरूपमुपलभमान इव स्वकल्पितसंसारजालस्योपसंहरणेन स्वात्मन्येव विश्राम्यतीति प्रदर्शितम्। अनुवादकर्त्रा तावद्गुरुवाक्यं संक्षिप्ततया निगूढार्थतया च क्वचित् क्वचिद् दुरवगाहमित्यवधाय यथाप्रयोजनं व्याख्याभिस्तत्स्फुटीकृत्य सामान्यतो ग्रन्थाशयनिष्कर्षो भूमिकायां निबद्धः पूर्वापरसङ्गतिश्च तत्र तत्र युक्तिभिः प्रदर्शिता। साधनमार्गमनाश्रितानां बुद्धिमात्रोपजीविनां बुद्धिमहिम्ना गुरुवाण्यास्तात्पर्योद्धारस्य दुःशकत्वेऽपि शास्त्रार्थसमन्वयसरणिप्रदर्शनेन योगमार्गे रत्युत्पादनेन च ग्रन्थस्यास्य सिद्धान्तसम्प्रदायादिनिर्विशेषतया सर्वत्र समुचितः समादरो भवितेत्याशासे—

अधिवाराणसि
३१-१-३६

श्रीगोपीनाथकविराजः।

श्रीश्रीगौरकृष्णः शरणम्

सकलशास्त्रपारङ्गतानां पण्डितप्रवराणां श्रीमन्माध्वसम्प्रदायाचार्य्यदार्शनिकसार्वभौम-साहित्यदर्शनाद्याचार्यतर्करत्नन्यायरत्न श्रीगोस्वामिदामोदरशास्त्रि-महोदयानां सम्मतिः—

ब्रह्मनिष्ठचेतसो विख्यातस्य योगनिष्णातस्य लाहिड़ीत्युपाख्यस्य श्रीश्यामाचरणमहाशयस्य योग्यशिष्येण बंहीयसाऽनेहसा योगानुष्ठानतोऽवाप्तशक्तिना ब्रह्मचारिणा पालध्युपनाम्ना श्रीहरिनारायण महोदयेन काशीमध्यासीनेन पुराणादिसारविशेषमादाय हिन्दी-बङ्गभाषयोर्निबद्धं "सद्गुरुवाणी"—नामकं पुस्तकं पौराणिक-श्रीराममूर्तिशास्त्रिणा संस्कृतपद्यैरनूदितं नानावस्थनरतनुचित्रै-र्जिज्ञासुहिताय समेतं वीक्ष्यावाप्तां प्रसक्तिं प्रकटयन्निबन्धेऽस्मिन्दुरूहाः शास्त्रनिगूढा ये विषयाः सरलसरण्या समावेशितास्तैरनायासेन जिज्ञासव उपक्रियेरन्नेह मनागपि विचिकित्साप्रसर इति बाढं विश्वसन्ननुरुन्धंश्चैतत्संग्रहाय बुभुत्समानान्मुधा विस्तराद्विरमतीति—शम्।

पौषामार्यां वै. सं. १९९५ } गोस्वामिश्रीदामोदरशास्त्री
काश्याम्



(आत्मपरिचय)

आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्च योगादृते नहि ।
स च योगश्चिरं कालमभ्यासादेव जायते ॥ का० खं०

सर्व शक्तिमान् भगवान की असीम अनुकम्पा से इस संसार में मनुष्यों के उद्धार के लिये अनादि काल से ही भगवत् शक्ति संपन्न कोई न कोई महापुरुष समय समय पर आकर अपनी अनुपम शक्ति का परिचय देते हुये जगत् में एक ऐसी विशेष चमत्कृति प्रकट कर देते हैं, जिससे संसारी जन विवश होकर उनकी शरण में आकर आत्मोद्धार का उपाय हस्तगत कर लेते हैं। ठीक इसी प्रकार कुछ समय व्यतीत हुआ होगा कि इसी काशीपुरी में योगसाधन शक्तिसंपन्न प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद योगिराज श्रीश्यामाचरणजी लाहिड़ी महाशय अवस्थान किया करते थे। आप एक असाधारण व्यक्ति थे। आपने संसार दुःख तप्त प्राणियों के कल्याणार्थ एक ऐसा उपाय व्यक्त किया, जिसको कि दीक्षा अर्थात् (क्रिया) नाम से वह स्वयं व्यवहार करते थे। भगव-

त्कृपा से जिनको यह वस्तु प्राप्त हुयी है उन्हीं में से सहस्रों का उद्धार हो रहा है। यह हमलोगों की सी साधारण कान फूँकने वाली दीक्षा नहीं है यह तो मूलाधार में स्वयम्भू लिङ्ग (अर्थात्) जीव को वेष्टन करके निद्रिता जो कुण्डलिनी शक्ति है उसी शक्ति का संचार कर देना है। जिसको कि आगे संक्षेप से सप्रमाण निरूपण करूँगा। अस्तु, आप के विषय में जो कुछ कहा जाय वह सब सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। विशेष वृत्त के जिज्ञासु भक्तों को आपका जीवन चरित्र पढ़ना चाहिये। आपके शिष्य प्रशिष्य ही इस आनन्द का लाभ करते हुये निरन्तर आपके गुणों का गान करते हैं। जब आप लौकिक व्यवहार से संसार लीला समाप्त करके दृश्यमान पञ्चभौतिक शरीर से तिरोहित हुये तो आपके पञ्चानन जी भट्टाचार्य्य प्रभृति अच्छे अच्छे साधन शक्ति संपन्न शिष्य थे, किन्तु ये **प्रायः गृहस्थाश्रम** में रहते हुये ही योगसाधन किया करते थे। **"योगः कर्मसु कौशलं"** इस भगवद्वाक्य का वास्तविक रहस्य यही महापुरुष जानते थे उन्हीं पूज्यपाद श्रीश्यामाचरण जी लाहिड़ी महाशय के सुयोग्य शिष्यों में से एक योगिवर महात्मा अत्यन्त गुप्त रूप से गृहस्थाश्रम में ही प्रायः पचास वर्ष से भी अधिक समय तक योग साधन कर संसार के कल्याणार्थ थोड़े ही समय से इसी काशीपुरी में प्रकट हुये हैं। आप ब्रह्मचारी श्रीहरिनारायण जी पालधी के शुभ नाम से विख्यात हैं। आप एक बड़े प्रतिष्ठित घराने के हैं लाखों रुपये की संपत्ती आपके पास थी, किन्तु आप

सर्वथा ही उसकी उपेक्षा करते रहे, क्योंकि ऐसे महापुरुष लक्ष्मी की इच्छा नहीं करते। भगवान् ने कहा है—

'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः'।

फिर भी लक्ष्मी चरणों में लोटा ही करती है यह उनकी इच्छा का विकास मात्र है और इच्छा भी आपने अपने गुरूजी महाराज का महत्त्व तथा नाम को चिरस्थायी करने के लिये की। आप का एक बड़ा सुन्दर गुरुधाम है जिसमें पूज्यपाद श्री श्यामाचरण जी लाहिड़ी महाशय का चित्र आपके सामने साक्षात रूप से विराजमान है और आप भी वहीं गुरु चरणों में बैठकर गुरुलब्ध अपूर्व शक्ति से अपने क्रियावान् शिष्यों को तथा जिज्ञासु मात्र को प्रति दिन अमूल्य उपदेश देते हैं। आपकी पुराणादि समस्त शास्त्रों पर विभिन्न भाषा में ऐसी विचित्र अन्तर्मुखी व्याख्या होती है जिसके सामने और किसी की भी व्याख्या हृदय में स्थान प्राप्त नहीं करती। अस्तु! हमने आपके कुछ उपदेश संग्रह के लिये प्रार्थना की, किन्तु पुज्यपाद गुरू जी ने कहा—'जो पाया है उसीको साधो उसीसे सब होगा'। अन्त में हम हृदय में ही तीव्र प्रार्थना करने लगे हमारी प्रबल इच्छा को जानकर महाराज जी बोले—"अच्छा, तुम लोगों ने भगवत्कृपा से जिस अमूल्य वस्तु का लाभ किया है उसी विषय में कुछ थोड़ा सा कह देते हैं"। अन्त में आपके मुख से बङ्गला तथा हिन्दी भाषा के दोहों में अमृतमयी वाणी का उत्थान हुआ

इस वाणी को हृदय में अनुभूति द्वारा आपने अपने गुरु जी महाराज से सुना था इस कारण इसका "सद्गुरुवाणी" ऐसा अन्वर्थ नाम प्रकाशित किया गया। जिसके दो भाग आपके समक्ष में उपस्थित किये गये हैं और भागों को भी निकालने का आयोजन किया जा रहा है। विद्वान् पुरुष और भी विभिन्न भाषाओं में इसका अनुवाद कर रहे हैं। संभव है वह भी वाणी शीघ्र प्रकाशित होगी। आपने इस पुस्तक में योग साधन का निगूढ़ रहस्य का ऐसे सरल भाव में व्यक्त किया है जिसको योगमार्ग के उच्च साधक मात्र ही गुरु कृपा से अपने हृदय में अनुभव करके विशेष रूप से उपकृत व सुखी हो सकेंगे। यद्यपि यह पुस्तक सर्व साधारण के बोधगम्य नहीं है तो भी हम आशा करते हैं कि इसके द्वारा बहुत लोगों को साधनपथ के पथिक होने की इच्छा बलवती होगी व भगवत्कृपा से पूर्वजन्म के कर्मानुसार निर्दिष्ट स्थान में इस अमूल्य दुष्प्राप्य साधन को लाभ करेंगे तथा क्रम से साधन मार्ग में अग्रसर होकर इस वाणी का यथावत् अर्थ बोध करके दुर्लभ मनुष्य जन्म को सार्थक करेंगे। मैंने इस अमूल्य रत्न को हिन्दी भाषा में देखकर विचार किया कि हिन्दीभाषानभिज्ञ संस्कृत प्रेमी इससे लाभ नहीं उठा सकेंगे इस कारण संस्कृत श्लोकों से यथा शक्ति इसका अनुवाद कर दिया है जिससे कोई भी इसकी उपेक्षा न करे (अस्तु !)। बाबा ने शरीर के भीतर माया यन्त्र कैसे चल रहा है और साधनानुसार उस त्रिगुण यन्त्र का त्रिविध दीक्षा द्वारा कैसे

परिवर्तन होता है तथा जीव तदनुसार किस प्रकार क्रम से गुण-मुक्त होकर समाधिस्थ होता है इस विषय में स्वयं आपने परिपक्व अनुभव से सृष्टि से महाप्रलय पर्यन्त के नाड़ी कमल तथा चक्रादि से सुसज्जित बहुत से बड़े बड़े रङ्गीन चित्र खींचे थे किन्तु फिर भी बाह्यदृष्टि वाले मनुष्य इनको नहीं समझेंगे और इस साधन से अपने आप से ही धीरे धीरे समझ जायेंगे इस लिये अनावश्यक समझ कर एक दिन उन चित्रों को कोठरी में बैठ कर जला रहे थे। दैवयोग से पूजनीया योगसाधन शक्ति संपन्ना माता जी को पता लगा वह दौड़ते दौड़ते वहाँ गयीं तो क्या देखती हैं कि सब चित्र जल चुके हैं केवल एक ही अवशिष्ट रहा है। पूजनीया माता जी ने हमलोगों के कल्याणार्थ प्रार्थना करके वह चित्र ले लिया जो आज तक गुरुधाम में वर्तमान है। जब हमने यह वृत्तान्त सुना तो हमको बड़ा दुःख हुआ। दुःखित देख कर बाबा बोले—"तुम लोग क्रिया करके मूलाधारादि चक्र को भेद-कर जितने ऊपर उठते जाओगे धीरे धीरे सूक्ष्म बुद्धि का लाभ कर पूर्व स्मृति का उदय होने के कारण तुमको सब मालूम पड़ जायगा उसी को साधो उसीसे सब होगा।" यह अमृत वचन सुन कर हमको आनन्द तो अवश्य हुआ फिर भी चित्र दर्शन की कुछ ग्लानि रह गयी। तब बाबा ने हमारा विशेष आग्रह जानकर अपने हाथ की लिखी हुई संक्षिप्त चित्रों की लिपि दिखलाई तो हमको बड़ा आनन्द हुआ अन्त में हमने बहुत बार पुस्तक तथा चित्र छपाने की प्रार्थना की तब आपने यथा कथञ्चित् पुस्तक छपाने

का आदेश दिया चित्र छपाने के लिये हम बराबर प्रार्थना करते ही रहे। एक दिन दैव योग से आपके शिष्य काशी के प्रसिद्ध चित्रकार पं० केदारनाथ जी शर्म्मा आ पहुँचे। हस्त के चित्र बनाने में आपका अपूर्व कौशल है उन्होंने भी प्रार्थना की तो बाबा ने शिष्यों के उपकारार्थ गर्भावस्था आदि से निर्विकल्प समाधि पर्यन्त के नौ चित्र दिये तथा चित्र परिचय व रहस्य भी दिया। आपने बाबा की हस्त लिखित पुस्तक में से अत्यन्त सावधानी के साथ रेखा नम्बर आदि मिला कर उनका याथातथ्येन उद्धरण किया तथा ब्लाक बनवाने में भी बड़ा आयोजन किया। हम आपके घोर परिश्रम का हृदय से समर्थन कर सहर्ष आपको धन्यवाद देते हुए भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि भगवान् इस परिश्रम के फलस्वरूप में आपकी योग संबन्धी क्रिया में उन्नति करें। अब हम प्रकृतोपयोगी कुछ शरीर के विषय में लिखते हैं। यद्यपि यह कार्य साधारण नहीं है क्योंकि भगवान् ने कहा है **"क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि"** सब प्राणियों के शरीर का ज्ञाता मुझ ही को जानो। अथवा 'सोइ जाना जिन देहु जनाई' के अनुसार आपके विशेष कृपा भाजन महात्मा पुरुष ही प्रतीत होते हैं उन्हींके प्रसाद से कुछ गुप्त रहस्य को व्यक्त करूँगा। हम लोग दर्शन उपनिषदादि वेदान्त ग्रन्थों को पढ़कर ब्रह्म के विषय में तर्क द्वारा अनवरत मीमांसा करते हैं किन्तु हमारा जड़ वस्तु का बोध करना बन्द नहीं होता। हम मायामुख जाग्रतावस्था में अविद्या के संग से रूप रस गन्ध

स्पर्श शब्द को बोध करते हैं क्योंकि जीव तत्काल में मनोमय कोष में रहता है और उसका स्थूल शरीर से संबन्ध होता है इसी कारण पांच वस्तुओं का बोध करना भी अनिवार्य है। स्वप्नावस्था में विज्ञानमय कोप में सूक्ष्म शरीर से संबन्ध होने के कारण उस समय भी इन्हीं पांच वस्तुओं का बोध होता है सुषुप्त्यवस्था में आनन्दमय कोप में कारण शरीर के साथ सम्बन्ध होने के कारण जड़ वस्तु का अभाव हो जाता है। इसीसे चैतन्य वस्तु का तत्काल बोध होता है किन्तु उसको व्यक्त नहीं कर सकता क्यों कि चैतन्य वस्तु इन्द्रियातीत है। भगवान् ने कहा है "**बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्**"। यह तीनों कोप मणिपूर अनाहत विशुद्धाख्य चक्र में हैं मनोमय कोप में चित् शक्ति मनोरूपा इच्छा शक्ति स्वरूप से संशय करती है विज्ञानमय कोप में वही शक्ति बुद्धिरूपा ज्ञान शक्ति स्वरूप से निश्चय करती है और आनन्दमय कोप में वही शक्ति क्रिया शक्ति स्वरूप से अभिमान करती है इसीको '**संशयात्मकं मनः, निश्चयात्मिका बुद्धिः, अभिमानात्मकोऽहङ्कारः**' कहा गया है। चित् शक्ति को मिला कर यही अन्तः करण चतुष्टय हो जाता है। भागवत में कहा है—

'मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्तमित्यन्तरात्मकं ।
चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्त्या लक्षणरूपया ॥' इति

शक्ति के क्रिया शील होने के कारण जाग्रतावस्था तथा स्वप्नावस्था में यह चक्र बराबर दक्षिणावर्त व वामावर्त में

घूमा करते हैं। सुपुप्त्यवस्था में तीनों चक्र ठहर जाते हैं तब बोध भी नहीं होता। पूज्यपाद शङ्कराचार्य्य ने कहा है—

'रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते।
सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः॥'

किस विचित्रता से यह यन्त्र चल रहा है हमको इसका कुछ भी लक्ष्य नहीं होता, हम कभी विचार नहीं करते कि हम कहाँ से आये हैं यह शरीर क्या है क्यों मर जाता है हम चैतन्य होकर जड़ वस्तु का बोध क्यों करते हैं हम चैतन्य व शरीर जड़ है यह बात तो साधारण ही है कि हम शरीर को बोध करते हैं शरीर तो हमको बोध नहीं करता इससे यह सिद्ध हुआ कि हम चैतन्य और शरीर जड़ है अब हमको चैतन्य का बोध करना चाहिये सो न करके जड़ वस्तु का बोध करते हैं यही हमारा अज्ञान है। भगवान् ने कहा है—

'अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥' इति

हम तो मा के पेट में रहे थे इसका भी हमको ज्ञान नहीं और हम शब्दातीत अचिन्त्य वस्तु की शब्द से मीमांसा करते हैं शास्त्र की ओर हम ध्यान नहीं देते—

'अचिन्त्याः खलु ये भावास्तान्न तर्केण योजयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥' इति

अर्थात् मन वाणी के परे जो शब्दातीत अचिन्त्य वस्तु है

उसकी तर्क द्वारा शब्द से मीमांसा नहीं हो सकती क्योंकि पुरुष मात्र का अपरा परा परमा प्रकृति अर्थात् स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीन शरीर से सम्बन्ध है और वह शरीर से परे है **'शरीर-त्रितयादन्यमात्मानमवधारयेत्'** इसी लिये हमारे वाचिक ब्रह्म-विचार से लक्ष्य सिद्ध नहीं होता हम तो यह भी नहीं जानते कि इस शरीर में हम कहां पर हैं हम तो अपने को शरीर ही समझ रहे हैं तो केवल शुष्क बातों से कहां तक काम चलेगा हां एक बात अवश्य होगी कि संसार में स्वप्न तुल्य थोड़े दिन के लिये प्रतिष्ठा हो जायगी मुक्ति कभी नहीं हो सकती शङ्कराचार्य्य जी ने कहा है—

'वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम् ।
वैदुष्यं विदुषां यत्तद्भुक्तये न च मुक्तये ॥' इति

अस्तु ! अब हम तीन बात का प्रतिपादन करेंगे कि हमारा शरीर कैसे बनता है हम इसमें कहां पर हैं और इससे हमारा उद्धार किस प्रकार होगा।

श्रीमद्भागवत तृतीयस्कन्ध ३० अध्याय के अन्तिम पद्य में तथा ३१ अध्याय के प्रारम्भ में कहा है देखिये—

क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः ।
कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये
स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः ॥ १ ॥

---

(१) परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः

कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम् ।
दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम् ॥ २ ॥
मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्घ्र्याद्यङ्गविग्रहः ।
नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः ॥ ३ ॥
चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः
षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे ॥ ४ ॥

प्राचीन कर्मानुसार यह जीव पूर्व अध्याय में कही गयीं जो यातनायें हैं उनको ८४ लक्ष योनियों में क्रम से भोग कर शुद्ध होकर अपने उद्धारार्थ मनुष्य के वीर्य कण का आश्रय करता हुआ स्त्री के उदर में प्रवेश करता है। जब गर्भाशय में स्थित वीर्य को एक दिन हो जाता है तो उसमें कलकल शब्द होने लगता है पांच दिन में पानी के बुल्ला के सदृश हो जाता है दश दिन में कर्कन्धू फल के सदृश हो जाता है बीस दिन में मांस के गोल टुकड़े अथवा अण्डे के सदृश हो जाता है एक मास में उसमें से शिर निकल आता है दो मास में बाहू हस्त पैर आदि अङ्गों की रचना हो जाती है तीन महीने में नख रोम हड्डी चर्म तथा लिङ्गादि स्थानों में छिद्र हो जाते हैं चार मास में रस रक्त मांस मेदा अस्थि मज्जा शुक्र इन सात धातुओं की उत्पत्ति हो जाती है पांच मास में भूख प्यास की उत्पत्ति हो जाती है छै मास में जीव संचार होने पर झिल्ली से वेष्टित जीव माता की दक्षिण कुक्षि में भ्रमण करता है। मनुष्य शरीर को छोड़ कर

और किसी शरीर में जीव का उद्धार नहीं हो सकता यह ध्यान रहे क्योंकि इसी शरीर में जीव के निकल जाने का यन्त्र बनाया गया है किन्तु वह बन्द रहता है जब जीव को भीतर से दीक्षा मिल जाती है तो वह खुल जाता है अब माता के शरीर के भीतर इस मनुष्य शरीर की रचना हो गयी अब बाह्य दृष्टि का त्याग कर अन्तर्दृष्टि कीजिये क्योंकि जीव संचार अन्दर ही से हुआ है—

कल्पना कीजिये कि मनुष्य के पृष्ठ की जो लम्बी हड्डी है उसको मेरुदण्ड कहते हैं वह खोखला है उसके भीतर एक सुषुम्ना नाड़ी है वह भी खोखली है उसके भीतर कमल के फूल हैं उन फूलों की कर्णिका भेदकर वज्रा नाड़ी का प्रवाह है उस वज्रा नाड़ी के भीतर जो शून्य हैं उनमें त्रिकोण हैं उन त्रिकोणों को भेदकर चित्रा नाड़ी प्रवाहित है इसी को वेद में त्रिवृत कहा है 'त्रिवृतोऽसि उस चित्रा नाड़ी के भीतर सब के नीचे आधार चक्र है उसके ऊपर मूलाधार स्वाधिष्ठान मणिपूर अनाहत विशुद्धाख्य मायाचक्र आज्ञाचक्र ललनाचक्र सहस्रारचक्र यह सब दस चक्र हैं इन्हीं चक्रों को भेदकर ब्रह्मनाड़ी अर्थात् चैतन्य का प्रवाह है। इनमें से मूलाधारादि पाँच चक्रों को अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनन्दमय कोष के नाम से शास्त्र में व्यवहार करते हैं इनमें क्रम से गन्ध रस रूप स्पर्श शब्द यह पंच तन्मात्रा हैं तथा पृथिवी जल तेज वायु आकाश यह पञ्चीकृत पंच महाभूत हैं। अब ऊपर के तीन चक्रों को लक्ष्य कीजिये

सर्व प्रथम सहस्रार चक्र में विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परंब्रह्म का अवस्थान है इनको शास्त्र में सत् चित् आनन्द के नाम से व्यवहार करते हैं दूसरे ललनाचक्र में विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चित्शक्तिस्वरूपा महामाया का अवस्थान है इनको परमा प्रकृति आद्या शक्ति भगवती इत्यादि नाम से व्यवहार करते हैं। किन्तु यहाँ पर साम्यावस्था होने के कारण दो नाम होते हुये भी वस्तु एक ही जाननी चाहिये क्योंकि एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व ही नहीं है जैसे चने में दो दाल के दाने लिपटे रहने पर भी चने को दाल के नाम से व्यवहार नहीं करते उसी प्रकार इनको भी चाहे परंब्रह्म कहिये अथवा महामाया कहिये। योग शास्त्र में कहा है—

'शक्तिशक्तिमतोर्भेदं वदन्त्यपरमार्थतः।
अभेदं चानुपश्यन्ति ज्ञानिनस्तत्त्वचिन्तकाः॥

ऐसी अवस्था में निस्पन्दन होने पर भी सृष्टि के समय सूक्ष्म स्पन्दन होने के कारण सहस्रारचक्र से आज्ञाचक्र तक शून्य का प्रवाह हुआ जिसमें विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परंब्रह्म स्वरूप से अधिष्ठित हुए। तब वह हम सत् हैं या चित् हैं या आनन्द हैं हमारी शक्ति कैसी है इसका स्वयं बोध नहीं कर सके जैसे चीनी स्वयं अपना बोध नहीं कर सकती तो ब्रह्म में **एकोऽहं बहुःस्याम्।** इस प्रकार की

इच्छा हुयी इसी को भा० तृ० स्क० ५ अ० के २३,२४,२५ श्लोकों में स्पष्ट कहा है ।

भगवानेक आसेदमग्र आत्मात्मनां विभुः ।
आत्मेच्छानुगतावात्माऽनानामत्युपलक्षणः ॥
स वा एष तदा द्रष्टा नापश्यद्दृश्यमेकराट् ।
मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥
सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका ।
माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥

वेदान्ती विद्वान् तर्क करते हैं कि ब्रह्म में इच्छा कैसे हुयी यह बात तो साधारण है कि सहस्रारचक्र में चित्स्वरूप परं ब्रह्म व इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्ति में जब कोई भेद ही नहीं है तो इच्छा होने में भी कोई आपत्ति नहीं, दूसरी बात यह है जब इच्छादि शक्तियां उसमें निद्रितावस्था में है और उसका ज्ञान अनिद्रित है जो कि सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् इन दोनों पदों से सूचित हो रहा है तो इच्छा का प्रादुर्भाव भी होना सर्वतो-भावेन ठीक ही है। विशेष हम नहीं लिखते क्योंकि अपरो-क्षानुभूति योग साधन लब्धज्ञान से होती है (१) शास्त्र पढ़ कर अनेक जन्म में भी नहीं हो सकती दूसरी बात यह है कि हमको ब्रह्म मीमांसा करने का अधिकार भी नहीं

(१) अभ्यासात्कादिवर्णो हि यथा शास्त्राणि बोधयेत् । तथा योगं समासाद्य ब्रह्मज्ञानं लभेन्नरः ।

है क्यों कि जो जड़ वस्तु रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द को बोध कर रहा है उसका ब्रह्म से कुछ सम्बन्ध ही नहीं है जैसे प्रकाश अन्धकार दो विरुद्ध वस्तु का एक कालावच्छेदेन बोध नहीं होता उसी प्रकार चैतन्य आत्मा व जड़ शरीर का भी विरुद्ध वस्तु होने के कारण एक साथ बोध नहीं हो सकता। भगवान् ने पहिले अर्जुन को दिव्य चक्षु दिया अनन्तर अपना रूप दिखलाया जब मनुष्य को स्वयं भगवान् ही कोई महापुरुष का रूप धारण करके दिव्य चक्षु दें तब वह धीरे धीरे मूलाधार से उठ कर पंच कोश के बाहर निकल कर मायाचक्र को फोड़ कर जग जावे तब परा बुद्धि का लाभ कर ब्रह्म जिज्ञासा करे।

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

हम तो समझते हैं कि हम जग रहे हैं जब हम जागही रहे हैं तो महावाक्यों को क्यों कहा। महात्मा तुलसीदास जी ने तो योगी पुरुष ही जागता है ऐसा लिखा है।

मोहनिशा सब सोवन हारा देखत स्वप्न अनेक प्रकारा।
इहि जग यामिनि जागहिं योगी परमारथी प्रपञ्च वियोगी।'

बिना उठे जाग नहीं सकता बिना जागे ब्रह्म मीमांसा नहीं कर सकता तो हमारा उठना ही कर्म है। इसी को भगवान् ने अर्जुन से **'उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कौन्तेय'** बारबार कहा। अस्तु प्रकृतमनुसरामः। ब्रह्म में इच्छा हुयी यह बात सिद्ध हुयी। तब वही परमा प्रकृति रजोगुणात्मिका

मनोरूपा इच्छाशक्तिप्रधाना चित्शक्तिस्वरूपा महामाया नाम से संकल्प द्वारा पृथक् होकर आज्ञा चक्र में अधिष्ठित हुयी। यह शक्ति त्रिगुणात्मिका है इस लिये तमोगुणात्मिका अहंकार रूपा क्रियाशक्तिप्रधाना मायाशक्ति, जड़शक्ति, स्वरूपा योगमाया नाम से सोम चक्र में स्थित हुयी इसीसे उसको माया चक्र कहते हैं पुनः शुद्धसत्त्वात्मिका परावुद्धिरूपा ज्ञानशक्ति प्रधाना ब्रह्मशक्ति, चेतनशक्ति स्वरूपा भोगमाया नाम से आधार चक्र में स्थित हुयी। ऐसी अवस्था में चेतनशक्ति नीचे और जड़शक्ति ऊपर होने के कारण पुनः परिवर्तन हुआ अर्थात् उस प्रवाह का प्रत्याहार कर भोगमाया आज्ञा चक्र में स्थित हुयी और रजोगुणात्मिका महामाया आधार चक्र में स्थित हुयी इस प्रकार ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति इच्छाशक्ति स्वरूपा भोगमाया योगमाया महामाया का स्थान विभाग वर्णन किया। तब उस आज्ञाचक्रस्थिता चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया अर्थात् चित्तदर्पण में चित्स्वरूप परब्रह्म चित्तरूपी ब्रह्म स्वरूप से प्रतिबिम्बित हुये इसी चित्स्वरूप परब्रह्म व चित्तरूपी ब्रह्म जो कि बिम्ब प्रतिबिम्ब है वेदान्त शास्त्र में चित् चिदाभास कहा गया है। अब इसी चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया से तीन गुण का प्रवाह हुआ अर्थात् आज्ञा चक्र से माया चक्र तक रजोगुण का प्रवाह हुआ इसमें राजसत्त्वात्मक चैतन्य ब्रह्मा का अधिष्ठान है मायाचक्र से मणिपूर चक्र तक सत्त्वगुणका प्रवाह हुआ इसमें सत्वगुणात्मक चैतन्य विष्णु का अधिष्ठान है और मणिपूर से आधार चक्र तक तमोगुणका प्रवाह

हुआ इसमें तामससत्त्वात्मक चैतन्य शिव का अधिष्ठान है। इसीको पुराणादि ग्रन्थों में कहा है।

'रजोभावस्थितो ब्रह्मा सत्त्वभावस्थितो हरिः।
तमोभावस्थितो रुद्रस्त्रयो देवास्त्रयो गुणा।'

इस प्रवाह में ओंकार उ अ म के स्वरूप से है।

'अकारः सात्त्विको ज्ञेय उकारो राजसः स्मृतः।
मकारस्तामसः प्रोक्तस्त्रयो देवास्त्रयो गुणाः।

यह तीनों ही शब्दात्मक चैतन्य हैं। अब चित्तरूपी ब्रह्मा आज्ञाचक्र से "हं" शब्द से स्पन्दित होकर माया चक्र तक आये तब उस माया का संग होते ही पूर्व प्रवाह का प्रत्याहार हो गया अर्थात् महामाया आज्ञा चक्र में अधिष्ठित हुयी और भोगमाया का आधार चक्र में पतन हुआ अतएव ऊपर रहने के कारण योगमाया वलवती हुयी। तब महामाया से प्रकारान्तर से गुण-प्रवाह हुआ अर्थात् आज्ञाचक्र से मायाचक्र तक तमोगुण का प्रवाह हुआ इसमें शिव की ब्रह्म संज्ञा है और वह काल स्वरूप से साक्षी हैं। मायाचक्र से मणिपूर तक सत्त्वगुण का प्रवाह हुआ इसमें विष्णु की ईश्वर संज्ञा है और वह नियन्तृ स्वरूप से मायोपहित चैतन्य होने के कारण सोपाधिक चैतन्य हैं। और मणिपूर से आधार चक्र तक रजोगुण का प्रवाह हुआ इसमें ब्रह्मा की जीव संज्ञा है और वह नियम्य स्वरूप से सोपाधिक चैतन्य है। इस प्रवाह में ओंकार म अ उ के स्वरूप से है। अब वही चित्

शक्ति में प्रतिबिम्बित रजोगुणात्मक ब्रह्मा माया शक्ति के संग से सोपाधिक होकर जीव संज्ञा को प्राप्त हुआ। अब जीव मूलाधार से सो शब्द से प्रत्याहृत होकर मणिपूर चक्र में आकर सत्त्वगुणात्मक विष्णु अर्थात् ईश्वर के प्रवाह से मिलकर जीव तथा ईश्वर दोनों एक प्रवाह में आगये। अब बीच में थोड़ी सी बात समझ लीजिये मायाचक्र से मणिपूर तक जो प्रवाह है वह स्वतन्त्र रूप से योगमाया का है क्यों कि चतुष्पाद चैतन्य के इसी एक पाद में मायाशक्ति का खेल है इसी में चतुर्दश भुवन हैं वेद में स्पष्ट कहा है।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।

भागवत द्वि. स्क. ६ अ. १८,१९ के श्लोक में अक्षरशः इसका अनुवाद किया है।

पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः।
अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायि मूर्धसु॥
पादास्त्रयो बहिश्चासन्नप्रजानां य आश्रमाः। इति।

अतः इसी एक पाद में मणिपूर से अनाहत तक अकारात्मक ऋग्वेद अनाहत से विशुद्धाख्य तक उकारात्मक यजुर्वेद और विशुद्धाख्य से माया चक्र तक मकारात्मक सामवेद है। भगवान् ने गीता में कहा है।

वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च।

ओंकार के तीनों पादों में क्रम से विश्व तेजस प्राज्ञ भी समझना चाहिये। रामगीता में लिखा है।

अकारसंज्ञः पुरुषो हि विश्वक उकारकस्तैजस इज्यते क्रमात्।
प्राज्ञो मकारः परिपठ्यतेऽखिलैःसमाधिपूर्वं न च तत्परस्तात्॥

इसी ओंकार को भागवत तथा गीता में उच्चारण करने को कहा है क्यों कि इसके उच्चारण से जीव का बन्धन छूट जाता है हम लोग तो व्याकरण पढ़ कर के भी उलटा अर्थ समझते हैं। ठीक है समझना ही पड़ेगा क्यों कि मातृगर्भ से जब हम भूमि पर आये तो हमारी बुद्धि जो कि चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया है जिसको शास्त्र में सर्पाकारा कुल कुण्डलिनी शक्ति कहा है वह उलट गयी अर्थात् गर्भावस्था में जिसका शिर ऊपर था वह शिर नीचे मूलाधार में होगया इसी कारण पाँच वस्तुओं का बोध होता है। मायायन्त्र में देखिये। अब हम जो बोध करेंगे वह सब उल्टा होगा। अगर बुद्धि न उल्टी होती तो हम चैतन्य आत्मा होकर जड़ शरीर का बोध क्यों करते हैं। इसी से भगवान् ने कहा कि—**"ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते"**। **"नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य"** अर्थात् हम उसको वह बुद्धि देंगे जिससे वह सब माया यन्त्र को भेद कर हमारे पास आज्ञा चक्र में आजायेगा। शास्त्र पढ़ने से बुद्धि का लाभ कभी नहीं हो सकता। क्योंकि,

कर्मणा जायते बुद्धिः, बुद्धिः कर्मानुसारिणी।

और कर्म तो प्राण की गति है। भा. तृ. स्क. २६ अ; ३१ श्लोक में कहा है।

"प्राणस्य हि क्रियाशक्तिर्बुद्धेर्विज्ञानशक्तिता"

और कर्म भी विना भगवान् के दिये कोई कर नहीं सकता क्योंकि स्वयं भगवान् ने कहा है। "तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि", हम तुमको कर्म बतलायेंगे क्योंकि हम ही माया यन्त्र को चला रहे हैं केवल पोथी पढ़कर जानना तो अत्यन्त असंभव है और वह कर्म करने का अधिकार भी भगवान् किसी महापुरुष के रूप में आकर दे जाते हैं जिसको कि धनमदान्ध विद्यामदान्ध पुरुष नहीं समझ पाते और अन्त में हाथ मलते रह जाते हैं अस्तु! कर्म की व्याख्या बड़ी गूढ़ है ग्रन्थ विस्तर भय से यहां पर नहीं लिखते जब कभी बाबा का आदेश होगा तब लिखेंगे। अब उच्चारण शब्द का क्या अर्थ है सुनिये उत्पूर्वक चर गति-भक्षणयोः, इस धातु से उच्चारण शब्द की सिद्धि होती है ऊपर गति करना अर्थात् ऊपर चढ़ाना ओंकार का उच्चारण अर्थात् ओंकार को ऊपर चढ़ाना भाव यह है ओंकार शब्द है और शब्द का आधार शून्य है नीचे के शून्य को ऊपर के शून्य में लय करने से ओंकार का उच्चारण होता है और ओंकारोच्चारण होने पर शब्दात्मिका चित्शक्ती मायाचक्र के बाहर निकल जाती है क्योंकि वही शक्ती मनो रूपा इच्छा शक्ति है और उसी के साथ जीव है जब शक्ति निकली तब जीव भी निकल जाता

क्यों कि—

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।

यही अर्थ संगत है । इस अर्थ में भगवद्वाक्य प्रमाण है ।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।

विशेषेणाऽऽहरन्नूर्ध्वं नयन्नित्यर्थः । ओंकार को ऊपर चढ़ाना और हमारा स्मरण करना इन दो बातों को कहा । यदि ऐसा अर्थ नहीं माना जायगा तो भागवत से विरोध होगा सुनिये भा. ११ स्क. १४ अ. के ३४, ३५, ३६, ३७, ४५, ४६, श्लोक में कहा है—

हृद्यविच्छिन्नमोङ्कारं घण्टानादं बिसोर्णवत् ।
प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत्स्वरम् ॥
एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत् ।
दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग्जितानिलः ॥
हृत्पुण्डरीकमन्तःस्थमूर्ध्वनालमधोमुखम् ।
ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥
कर्णिकायां न्यसेत्सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् ।
वन्हिमध्ये स्मरेद्रूपं ममैतद्ध्यानमङ्गलम् ॥
एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि ।
विचष्टे मयि सर्वात्मञ्ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ॥
ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः ।
संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ॥ इति ॥

इन भगवद्वाक्यों से यह सिद्ध हुआ कि ओंकार को चढ़ाओ

और हमारा स्मरण करो किन्तु ध्यान रहे ऐसा ओंकारोच्चारण करने से प्राण ही निकल जायगा क्यों कि प्राण शक्ति शब्दात्मिका है उसी के साथ जीव है। भगवान् ने कहा है।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।

इसलिये घबड़ाना नहीं चाहिये गुरूजी नाम देकर उसी समय पुनर्जीवित कर देते हैं भाव यह है हंस प्रवाह जो कि कर्मकाण्ड है वही पञ्चतत्त्व का स्थूल शरीर है ओंकारोच्चारण से इसको त्यागकर सोहं प्रवाहरूप जो ज्ञानमार्ग है जीव उसी परमगति को प्राप्त हो जाता है ज्ञान होने पर फिर कौन मरता व जन्म लेता है "नात्मा जनान न मरिष्यति" अस्तु अब प्रकृत में आजाइये जीव ईश्वर एक प्रवाह में आगये यही गर्भावस्था है मायायन्त्र में देखिये। इस समय जीव सत्त्वगुण में ईश्वर चैतन्य के साथ गति करने के कारण चैतन्य मात्र का बोध करता था और बहुत जन्म के कर्मों का स्मरण था क्योंकि उसकी ज्ञान शक्ति प्रधान गति थी।

तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम्।

किन्तु ऐसी अवस्था में यदि उसको बाहर निकाला जाय तो ओंकारोच्चारण पूर्वक वह अपने स्थान को लौट जायगा। दूसरी बात यह है जब कि जड़ शरीर और चैतन्य आत्मा दोनों का संकल्प हुआ है तो जीव को दोनों ही बोध कराना चाहिये किन्तु जड़ चैतन्य दोनों वस्तुओं के विरुद्ध होने के कारण एक साथ बोध

कराना भी असंभव है। क्योंकि ईश्वर चैतन्य है इसी कारण उसका संग छुड़ाने के लिये गर्भावस्था की जो गति थी। उसका परिवर्तन किया अर्थात् पूर्वोक्त ओंकार का प्रत्याहार करके दूसरे ओंकार का संचार किया जिसमें कि मायायक्र से विशुद्धाख्यचक्र तक रजोगुणात्मक उकार का प्रवाह हुआ विशुद्धाख्य से अनाहत तक सत्त्वगुणात्मक अकार प्रवाह हुआ और अनाहत से मणिपूर तक तमोगुणात्मक मकार का प्रवाह हुआ यह रजः प्रधान ओंकार की अनुलोम गति है फिर उसका भी प्रत्याहार करके ओंकार की विलोम गति की। अर्थात् मायाचक्र से विशुद्धाख्य तक तमोगुणात्मक मकार का प्रवाह हुआ विशुद्धाख्य से अनाहत तक सत्त्वगुणात्मक अकार का प्रवाह हुआ। अनाहत से मणिपूर तक रजोगुणात्मक उकार का प्रवाह हुआ। ऐसी अवस्था में राजसत्त्वात्मक ब्रह्मा अर्थात जीव का जो प्रवाह मणिपूर से आधार चक्र तक रहा उसको नीचे हटा कर मूलाधार से आधारचक्र तक कर दिया और उस रजोगुणात्मक उकार को मणिपूर से आधार चक्र तक बढ़ाय करके साढ़े तीन पाद कर दिया। और जो कि सत्त्वगुण में हं तथा सो शब्द से ओंकार का संचार व प्रत्याहार होता था जिस हं शब्द में चैतन्य व सो शब्द में चेतन शक्ती थी उस प्रवाह को भी मणिपूर से अवच्छिन्न करके अर्थात् दो टुकड़े करके माया चक्र से मणिपूर तक हंस का प्रवाह किया और मणिपूर से आधार चक्र तक सोहं का प्रवाह किया उस में सर्पाकारा चेतनशक्ति अधिष्ठित हुई और गर्भावस्था में यही सर्पाकारा

चेतनशक्ति चैतन्य के साथ मिल कर गति करती थीं तब इसका मुख ऊपर था मणिपूर में पोंछ थी किन्तु जब यह चैतन्य से बिच्छिन्न हुई तो वह उलट गयी और इसका मुख आधार चक्र में आगया तब उसी मुख से राजससत्त्वात्मक ब्रह्मा अर्थात् स्वयंभूलिङ्ग रूप धारी जीव को साढ़े तीन पेंच कुण्डलाकार से लपेटा। तन्त्र में कहा है।

"सार्धत्रिवलयाकारा स्वयंभूलिङ्गवेष्टिनी।

अवशिष्ट अंश से मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान चक्र को भेदती हुयी मणिपूर चक्र तक पहुँच कर फिर वहां से जब लौटी तो अपने आपको आठ पेंच से लपेट कर आधार चक्र तक पहुंच कर जहां इसका मुख था उसी मुख से पोंछ को थाम लिया। "तन्त्र में कहा है"।

"सवेष्ट्य सकला नाडीरष्टधा कुण्डलीकृता।
मुखे निवेश्य तत्पुच्छं सुषुम्नाविवरे स्थिता।"

यह नीचे की सोऽहं गति है।

अब गर्भावस्था में जिस ओंकार का उच्चारण होता था उसमें तीन पाद अ उ म रहा वही ओंकार रजोगुणात्मक उकार को ढाई पाद बढ़ा देने से साढ़े पांच पाद हो गया और मणिपूर से अवच्छिन्न कर इसी में हंस सोऽहं दो गति की अर्थात् मायाचक्र से विशुद्धाख्य तक तमोगुणात्मक मकार विशुद्धाख्य से अनाहत तक सत्त्वगुणात्मक अकार और अनाहत से मणिपूर तक रजोगुणात्मक उकार यह हंस की गति है और मणिपूर से स्वाधिष्ठान तक एक पाद,

स्वाधिष्ठान से मूलाधार तक दो पाद, मूलाधार से आधार चक्र तक आधा पाद इस ढाई पाद में सोऽहं को गति है दोनों मिला कर साढ़े पांच पाद ओंकार का संगठन किया। जिससे कि चित् शक्ती के साथ जीव आधार चक्र से मणिपूर तक गति करके फिर वहीं चला जावे नाभि भेदकर अपने स्थान में कभी न जा सके। क्योंकि हंस शब्द में प्राणवायु का आश्रय है और सोहं शब्द में अपान वायु का आश्रय है और नाभि अर्थात् मणिपूर चक्र में समानवायु रहती है इसी से प्राण अपान की विषम गति होती है और इसी कारण एक दूसरे से मिल नहीं सकता। किन्तु इस गति में भी सत्त्वगुण होने के कारण उसको चैतन्य का बोध रहा।तब उस जीव को जड़ बोध कराने के लिये उस कुलकुण्डलिनी शक्ति ने अपने मुख के बाहर वाम तथा दक्षिण भाग में इड़ा व पिङ्गला दो नाड़ी की रचना की फिर अपने मुख से दूसरी एक सांपिन पैदा करके इड़ा नाड़ी में उसका मुख और पिङ्गला नाड़ी में पोंछ को माया चक्र तक प्रवाहित किया और उसी मुख के अंश में तमोगुण व पोंछ के अंश में रजोगुणकी स्थिति करके पृथक् पृथक् तीन नाड़ी में तीन गुण का प्रवाह किया इसी को गीता में "गुणप्रवृद्धाः" ऐसा कहा है। कुण्डलिनी का मुख नीचे था इससे यह प्रवाह नीचे से ऊपर को गया है इस कारण गीता में। "अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखाः" ऐसा कहा गया है रजोगुण व तमोगुण की अनन्त वृत्तियां होने के कारण बहुवचन दिया है। अब उसी तमोगुण में आवरणशक्तिरूपा अविद्या व रजोगुण

में विक्षेप शक्तिरूपा अविद्या माया को स्थान दिया और स्वयं सत्त्वगुण में विद्याशक्ति रूप से अधिष्ठित हुयी। इसी विद्या अविद्या को भगवान् ने दैवी व आसुरी शक्ति रूप से कहा है। "दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।" वस्तुतः दोनों शक्तियां जड़ चेतन को छोड़कर कोई दूसरी नहीं हैं। और इन्हीं दोनों शक्तियों के परस्पर विरुद्ध होने के कारण पुराणादि ग्रन्थों में देवासुर संग्राम का नाम लेकर अनेक प्रकार से नाम रूप देकर उनको सजाया है जिसको साधारण मनुष्य नहीं समझ सकते। जो त्रिकालज्ञ मुनि हैं उनको इन झगड़ों से क्या प्रयोजन था। यह तो अपने ऊपर ही बीत रहा है इसलिये उनको विवश होकर कहना पड़ा। इस रजोगुणात्मिका व तमोगुणात्मिका शक्ति को दो दो राक्षसों का नाम रूप देकर सजाया है सुनिये हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु रावण कुम्भकर्ण शिशुपाल दन्तवक्त्र शुंभ निशुंभ चंड मुंड कहां तक कहें सर्वत्र इसी तरह सजाया है। और इसी चैतन्य आत्मा को भी नाम रूप से कहा है। जो नाम रूप को ही जानने वाला है उसको चैतन्य का ज्ञान विना नामरूप के कैसे कराया जायगा कहीं कहीं स्पष्टरूप से खोल भी दिया है फिर भी लक्ष्य नहीं होता। "मम माया दुरत्यया" भागवत में पुरञ्जनोपाख्यान योगवासिष्ठ में लवणराजा का उपाख्यान तथा विदूरथ का उपाख्यान पढ़िये। ऋषियों ने बड़े गूढ भाव से कहा है उसको विना साधन शक्ति संपन्न ज्ञान लाभ किये शास्त्र पढ़कर भूमण्डल में कोई नहीं समझ सकता अस्तु प्रकृत में

दोनों गुण में अविद्या माया का अधिष्ठान होने पर भी जड़ के कारण से दोनो प्रवाह की गति होना असंभव है इस लिये चित्-शक्तिस्वरूपा कुण्डलिनी शक्ति वाम भाग में प्रकृति अर्थात् चेतन शक्तिस्वरूप से अधिष्ठित होकर सोऽहं शब्द से चन्द्र की गति करने लगी और दक्षिण भाग में पुरुष अर्थात् चैतन्य स्वरूप से अधिष्ठित होकर हंस शब्द से सूर्य की गति करने लगी वाम तथा दक्षिण भाग में प्रकृति पुरुष हैं इसको तन्त्र में कहा है—

योगेनाऽऽत्मा सृष्टिविधौ द्विधाभूतो बभूव सः
पुमांश्च दक्षिणार्धाङ्गो वामार्धा प्रकृतिः स्मृता
सैषा मायात्मिका शक्तिर्हेतुभूता सनातनी

वाम तथा दक्षिण में चन्द्र सूर्य्य की गति है इसको याज्ञ-वल्क्य ने कहा है—

इडायां चन्द्रमा ज्ञेयः पिङ्गलायां रविः स्मृतः
चन्द्रस्तामस इत्युक्तः सूर्यो राजस उच्यते।
विषमार्गो रवेर्भागः सोमभागोऽमृतं स्मृतम् ॥

अब दोनो प्रवाह की गति होने लगी तब इच्छा ज्ञान क्रियात्मिका चित्शक्ति ने रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्ति स्वरूप से पिङ्गला नाड़ी में प्रवेश किया और उसी मन के साथ साथ रजोगुणात्मक जीव भी पिङ्गला नाड़ी में चला गया। तब जीव की सुषुम्ना की गति छूट गयी अर्थात् ज्ञानमार्ग बन्द हो गया। "मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।"

यही जीव की भूमिष्ठावस्था है माया यन्त्र २ चित्र में देखिये। इसी को भागवत में कहा है—

"पतितो भुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते।
रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः॥"

जीव की विपरीत गति हो गई भाव यह है जिस शब्दात्मिका चित्शक्ति का गर्भावस्था में माया चक्र से नाभि चक्र तक हं शब्द से संचार व सो शब्द से प्रत्याहार होता था उसी का भूमिष्ठावस्था में नाभि के नीचे सो शब्द से स्पन्दन व हं शब्द से प्रत्याहार होने लगा और पिङ्गला नाड़ी में भी सो शब्द से संचार व हं शब्द से प्रत्याहार होने लगा।

ऐसी अवस्था में राजस तामस बुद्धिरूपा अज्ञान शक्ति ने गर्भ के बाहर जीव को जड़ वस्तु अर्थात शरीर जो कि पाञ्चभौतिक है जिसकी सूक्ष्म तन्मात्रा रूप स्पर्श शब्द रस गन्ध है उसका बोध करा दिया। बाहर निकलते ही पहिले उसको अपना स्वरूप दिखलाया यह रूप तन्मात्रा तेज तत्त्व है एक जड़ वस्तु का बोध कराया फिर उसको गोदी में लिया यह स्पर्श तन्मात्रा अर्थात् वायु तत्त्व है दो जड़ वस्तु का बोध कराया फिर उससे लल्ला बचवा इत्यादि बातों को कहा यह शब्द तन्मात्रा अर्थात् आकाश तत्त्व है तीन जड़ वस्तु का बोध कराया फिर उसको दूध पिलाया यह रस तन्मात्रा अर्थात् जल तत्त्व है चार जड़ वस्तु का बोध कराया फिर तेल आदि मालिश करके उसको गन्ध सुंघाई यह गन्ध तन्मात्रा अर्थात् पृथिवी तत्त्व है इन पांच जड़ वस्तुओं का बोध

करा दिया। अब विचार करिये जो हरवक्त देखता छूता बोलता खाता सूंघता है तो फिर चैतन्य वस्तु का कैसे बोध करेगा। हम लोग तो बड़े, उद्योग से वेदान्तादि शास्त्रों का अभ्यास करते हैं किन्तु फिर भी इन पांच वस्तुओं में से एक का भी बोध करना बन्द नहीं होता तो हम में और मूर्ख में क्या अन्तर रहा दोनों बराबर ही होगये ठीक है जब तक प्राण की बहिर्गति होगी तब तक पांच वस्तुओं का बोध करना भी बन्द नहीं होगा इसी को किसी साधक ने कहा है—

'कभी न फुरसत मिलेगी बन्दे गज़ब यह झोखा हवा का है'

तब क्या करना चाहिये इस विषय में स्वयं भगवान् ने कहा है कि—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।

सुख रहित इस अनित्य लोक को प्राप्त कर हमारा भजन करो। अर्थात् नहीं ठहरने वाला अनित्य लोक पांच तत्त्व का प्रवाह रूप जो स्थूल शरीर है इसे प्राप्त कर हमारा भजन करो। असुख इस लिये कहा कि विषय आपात रमणीय होते हैं। अब भगवान् कौन हैं उनका भजन क्या है सुनिये पुराणों में कहा है—

रजोभावस्थितो ब्रह्मा सत्त्वभावस्थितो हरिः।
तमोभावस्थितो रुद्रस्त्रयो देवास्त्रयो गुणाः॥

इसके अनुसार भगवान् सत्त्वगुणात्मक चैतन्य हैं और वह नाभिचक्र के ऊपर हंस प्रवाह में अर्थात् अनाहत चक्र में हैं

उन्हीं का भजन करो अर्थात् उसी हंस मन्त्र का आश्रयण करो। यह हंस मन्त्र शून्य का प्रवाह है इसके एक एक शून्य को प्राण गति द्वारा ऊपर के शून्यों में लय करो अर्थात् जप करो जप करते करते जीव ईश्वर को प्राप्त कर लेगा क्योंकि इसी हंस प्रवाह में वह जीव के उद्धार के वास्ते ऊपर से नीचे उतर कर आये हैं वह अवतार चैतन्य कहे जाते हैं। जब हमको प्राप्त कर लिया तो **"मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते"** के अनुसार हम जीव का उद्धार कर अर्थात् उसको ऊपर खेंचकर मायाचक्र के बाहर निकाल देते हैं। ईश्वर तो जीव के उद्धारार्थ बैठे ही हुए हैं। जीव तो बाहर दौड़ रहा है। इस मन्त्र को शास्त्र में भी कहा है। **शिवादिक्रिमिपर्यन्तं प्राणिनां प्राणवर्त्मनः। निःश्वासोच्छ्वास-रूपेण मन्त्रोऽयं वर्तते प्रिये। सः कारेण बहिर्याति हंकारेण विशेत्पुनः। हंसहंसेति मन्त्रं वै जीवो जपति सर्वदा।** किन्तु जीव का यह जप अभी ठीक नहीं हो रहा है जब प्राण की गति भीतर ही हो तब इसका जप ठीक होता है अभी तो गति बाहर भी हो रही है। तब भीतर कैसे होगी। सुनिये। भगवान् ने कहा है। **प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।** अर्थात् **नासाभ्यन्तरचारी** प्राण और अपान को जब सम किया जावे अर्थात् दोनों की एक गति की जावे और वह सम तभी होंगे जब कि भीतर से दीक्षा दी जावे क्योंकि बिना प्राण अपान के सम किये वे दोनों पूर्णरूप से नासाभ्यन्तर नहीं होंगे बिना नासाभ्य-

न्तर के शुद्ध हंस मन्त्र प्राप्त नहीं होगा। हंस मन्त्र के विना ईश्वर को नहीं प्राप्त कर सकता फिर उद्धार भी नहीं होगा इस लिये भीतर ही से दीक्षा होनी चाहिये। अब दीक्षा पदार्थ क्या है।

ब्रह्मज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात्पापस्य संक्षयम्।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥

जिससे चैतन्य वस्तु का ज्ञान हो। अर्थात् सत्त्वगुण के प्रवाह में गति हो जाय और जो अविद्या मायारूप रजोगुण व तमोगुण का शरीर के भीतर प्रवाह है उसका प्रत्याहार हो जावे उसी को दीक्षा कहते हैं। भाव यह है कि मनोरूपा इच्छाशक्ति के साथ जीव संसार बोध कर रहा है और वह मन चित्शक्ति ही है वही पञ्चकोष में गति कर रही है और वही शब्दात्मिका चित् शक्ति अवच्छिन्न होकर शिवशक्ति के स्वरूप से हंस सोऽहं शब्द से प्राण व अपान के साथ गति कर रही है और मणिपुर से आधार चक्र तक प्रवाहित होकर साढ़े तीन पेंच से स्वयंभू लिङ्ग अर्थात (जीव) को वेष्टन करके स्वयं अपने आप को आठ पेंच से लपेट कर वह सर्पाकारा कुण्डलिनी शक्ति मुख से अपने पोंछ को थाम करके निद्रित है और सो तथा हं शब्द से स्पन्दित व निस्पन्दित होती है। ऐसी अवस्था में बिना शक्ति के संचार किये वह पीछे हटकर पंचकोष के बाहर नहीं निकल सकती अतएव जीव भी उसके बाहर नहीं जा सकता क्यों कि वही कुण्डलिनी शक्ति पिङ्गला नाड़ी में मनोरूपा इच्छा शक्ति के स्वरूप से गति कर रही है

और उसी के साथ जीव है। इस लिये कुण्डलिनी शक्ति के संचार के बिना मनोरूपा इच्छा शक्ति ऊपर नहीं उठ सकती तब जीव भी ऊपर नहीं उठ सकता और जड़ बोध करना भी बन्द नहीं हो सकता इस कारण प्रथम दीक्षा देकर हंस सोऽहं अर्थात् प्राण अपान को जोड़ दिया जाता है। अर्थात् प्राण अपान की जो विषम गति है उसको सम कर दिया जाता है। इसी को काशी खण्ड में योगनाम से व्यवहार किया है—

'प्राणापानसमायोगो योग इत्यपि कैश्चन'

और इसी को शक्ति संचार भी कहते हैं। किस प्रकार जोड़ा गया है इसको **माया यन्त्र तृतीय चित्र में देखिये** इस दीक्षा का नाम चक्षु अथवा क्रम दीक्षा है। मृत्यु के समय प्राणिमात्र की यह गति की जाती है जिससे पंचकोष से संबन्ध छूट जाता है और जीव इस शरीर के बाहर निकल जाता है। ओंकार के प्रवाह में उ अ म रहने के कारण अशुद्ध ओंकार का उच्चारण नहीं होता और जीव का जन्म मरण बराबर लगा ही रहता है। यदि भाग्य से जीव को यह दीक्षा प्राप्तहोगयी तो जीव धीरे धीरे शक्ति के साथ आधार चक्र से उठ कर मूलाधार व स्वाधिष्ठान चक्र को भेदता हुआ जब नाभिचक्र में आजाता है तो बढ़ी हुयी रजोगुण की मात्रा नष्ट हो जाती है ओंकार के तीनों पाद उ अ म बराबर हो जाते हैं किन्तु अशुद्ध ओंकार होने के कारण इसका उच्चारण नहीं होता एक साथ सो शब्द से

उसका प्रत्याहार हो जाता है और उसके साथ ही साथ जीव का *भी आकर्षण हो जाता है ऐसी अवस्था में जीव की मृत्यु*[1] हो जाती है। किन्तु इस जीव ने योगसाधन शक्ति से प्राण त्याग किया है अभी इसकी निर्दिष्ट आयु अवशिष्ट है इस कारण ऊपर से हं शब्द से फिर ओंकार का संचार ०००००००००० होता है अर्थात जीव दुबारा जन्म का लाभ करता है वह जिन्दा हो जाता है पहिले जन्म में वह शूद्र रहा क्योंकि सब के नीचे आधार चक्र में पड़ा था इसी से कहा है। **जन्मना जायते शूद्रः** । जब इसने संस्कार द्वारा दुबारा जन्म का लाभ किया तो शूद्र से द्विज होगया। **संस्काराद्द्विज उच्यते** । इस ओंकार के प्रवाह में अ उ म हैं इसमें जीव की सत्त्वगुणात्मिका विद्या शक्ति प्रधान गति कर दी गयी अर्थात् जीव ने हंस मन्त्र में दीक्षित होकर दैवी शक्ति के साथ ओंकारोच्चारण का अधिकार प्राप्त किया ऐसे ही संस्कार प्राप्त जीव को भगवान् ने गीता में हे अर्जुन ऐसा संबोधन देकर कहा है, मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि भारत।' तुम्हारा सत्त्वगुणात्मक चैतन्यावतार ईश्वर की शक्ति के सामने जन्म हुआ है क्योंकि तुम्हारे सामने सत्त्वगुणात्मक अकार-संज्ञक ऋग्वेद है काशी खण्ड में कहा है—

अकारं सत्त्वसम्पन्नमृक्क्षेत्रं सृष्टिपालकम्।

इसका तुम उच्चारण करो अब तो माया यन्त्र के पार

---

(१) मृत्यु से उपाधि का त्याग समझना चाहिये।

निकल ही जाओगे शोक मत करो। अब जीव संज्ञक अर्जुन ऋग्वेद का पाठ करने लगा इस लिये उसकी विप्र संज्ञा होगयी। **वेदपाठाद्भवेद्विप्रः। यह दूसरी मन्त्र दीक्षा कही जाती है। मायायन्त्र चतुर्थ चित्र में देखिये।** अकारोच्चारण करने से अर्थात् नीचे के शून्य को ऊपर के शून्य में लय करने से अकार उकार में संधि हो गयी तो वाम नासिका से श्वासा गिरना बन्द होगया। अर्थात् वाम नासिका में इड़ा नाड़ी का प्रवाह है उसमें तमोगुणात्मिका आवरण शक्ति रूपा जो आसुरी शक्ति है उसका प्रत्याहार होगया **पंचम चित्र में देखिये** इसीको पुराणों में वृत्रासुर की वाम बाहु का छेदन कहा है। अब जीव नामधारी अर्जुन उकार संज्ञक यजुर्वेद का उच्चारण करने लगा। **उकारमथ तस्याग्रे रजोरूपं यजुर्जनिम्।** जब उकार की मकार से सन्धि होगयी तब दक्षिण नासिका का भी श्वासा गिरना बन्द होगया अर्थात् दक्षिण नासिका में पिङ्गला नाड़ी का प्रवाह है उसमें रजोगुणात्मिका विक्षेप शक्ति रूपा जो आसुरी शक्ति है उसका भी प्रत्याहार होगया अर्थात् वृत्रासुर की दक्षिण बाहु का भी छेदन होगया। **षष्ठ चित्र में देखिये।**

अब जीव का कण्ठगत प्राण होगया तो भी वह हंसो हंसो इस प्रकार मकारात्मक[1] सामवेद का उच्चारण करता हुआ एक एक नीचे

१—मकारं स ददर्शाथ तमोरूपं विशेषतः। साम्नो योनिं लये हेतुं साक्षाद्रुद्रस्वरूपिणम्।

के शून्य को ऊपर के शून्य में लय करके आगे बढ़ने लगा। जब सत्त्व गुण के प्रवाह के सब शून्य लय हो गये केवल एक शून्य अवशिष्ट रह गया तो वह मायाचक्र को भेदकर जिस समय बाहर निकला उसी समय फिर जीव मर गया अर्थात् स्थूलोपाधि का त्याग होगया। अर्थात् योगमाया के सत्त्वगुण का भी प्रत्याहार होगया इसी को वृत्रासुर का शिरश्छेदन पुराणों में कहा है—

"भित्त्वा वज्रेण तत्कुक्षिं निष्क्रम्य बलवद्विभुः। उच्चकर्त शिरःशत्रोः" हम पहिले कह चुके हैं कि मायाचक्र से नाभि चक्र तक जो प्रवाह है वह स्वतंत्र रूप से योगयाया का है इसी में तीन गुण का संकल्प किया था उन तीनो का प्रत्याहार होगया वस्तुतः महामाया का तो यह रजोगुण ही है क्यों कि महामाया का गुण विभाग इस प्रकार है आज्ञा चक्र से माया-चक्र तक सत्त्वगुण, मायाचक्र से नाभि चक्र तक रजोगुण, नाभि चक्र से मूलाधार तक तमोगुण, इस महामाया के एक पाद में अर्थात् रजोगुण में तीन गुण का संकल्प कर योग-माया ने यह खेल किया था वह समाप्त होगया अब जीव माया-चक्र के बाहर निकला तो उसकी मृत्यु होगयी अर्थात् स्थूल शरीर का त्याग होगया किन्तु साथ ही साथ नीचे के एक शून्य ने जहां नादप्रवाह पतित शून्य में अर्थात् ब्रह्मसूत्र में प्रवेश किया तो जीव ने पुनः नव जीवन का लाभ किया। अर्थात् सत्त्वगुणात्मिका विद्या शक्ति का लाभ किया। इसी को स्पर्श

दीक्षा कहते हैं भगवान् ने भी इसी दीक्षा को गीता ६।२८ के श्लोक में कहा है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥

अस्तु ! यहां सोहं प्रवाह की जो हं शब्द से नीचे कृष्ण गति हो रही थी वह सो शब्द से पलट कर ऊर्ध्व गति अर्थात् शुक्ल गति होगयी। इसी को भगवान् ने गीता में कहा है।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥

अर्थात् सोहं प्रवाह की ऊर्ध्व गति होने से जीव ब्रह्म हो जाता है और फिर वह संसार में नहीं आता क्यों कि संसार का मूल-भूत भेद भ्रम का नाश हो जाता है। महात्मा तुलसीदास जी ने भी यही कहा है।

सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा दीप शिखा सम प्रबल प्रचंडा।
आतम अनुभव सुख सुप्रकाशा तब भव मूल भेद भ्रम नाशा ॥

यदि हं शब्द से अधोगति होगी तो बराबर आवेगा इसी सोहं गति को प्राप्त करने वाले जीव को आपने वाल्मीकि कहा है क्योंकि वह वल्मीक अर्थात् वामी से निकला है और राम का उल्टा नाम जप कर ब्रह्म भी हुआ है।

उल्टा नाम जपत जग जाना। वाल्मीकि भयो ब्रह्म समाना ॥

अभिप्राय गूढ़ है जीव आधार चक्र में पड़ा है उसके ऊपर २४ तत्त्व की वामी जम गयी है ऊपर माया चक्र से बन्द हो गयी है यही हंस का प्रवाह है इसमें जीव के उद्धारार्थ अवतार चैतन्य राम अनाहत चक्र में स्थित हैं जब जीव इस २४ तत्त्व की वामी को फोड़ कर निकला तो नवीन जन्म होने के कारण वाल्मीकि हुआ और राम जो हंस शब्द में थे उसको उलटा जपा अर्थात् सो शब्द से उसकी ऊर्ध्वगति की तो वाल्मीकि नाम वाला जीव ब्रह्म हो गया। "ब्रह्मविद्ब्राह्मणो भवेत्" इसी नाम का आपने वर्णन किया है।

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।

अगुन अर्थात् निर्गुन, सहस्रार से आज्ञा चक्र तक है और सगुन माया चक्र से मणिपूर तक है आज्ञा तथा मायाचक्र के बीच में नाद बिन्दु स्वरूप प्रणव है यही सोहं की गति है इसी को नाम कहते हैं वह कैसा है (सुसाखी) अच्छी प्रकार से दिव्यचक्षु के साथ में है क्योंकि वह द्रष्टा है फिर कैसा है (उभय प्रबोधक) जड़ चैतन्य दो वस्तुओं का बोध कराता है क्यों कि वह (दुभाषी) है उसमें दो शब्द हैं हंसः सोहं। हं शब्द से नीचे गति होने से जड़ बोध कराता है सो शब्द से ऊर्ध्वगति होने से चैतन्य बोध कराता है वस्तुतः न जड़ ही है न चैतन्य ही है एक हम ही हैं संकल्प से दो मान लिया गया है उस ने दोनों मिथ्या पदार्थों का सत्य बोध करा दिया इससे वह बड़ा (चतुर) है। संक्षेप से भाव व्यक्त किया है। अब प्रकृत में जीव नाद को बिन्दु में

लय करते करते आगे बढ़ने लगा जब नाद भी बिन्दु में लय हो गया तब सत्त्वगुण का त्याग होने के कारण जीव शुद्ध सत्त्व में स्थित हुआ अर्थात् बिन्दुरूप आज्ञाचक्र में ब्रह्म रूप से जीव की स्थिति हुयी। यही सारूप्य मुक्ति है और इसी को सविकल्प व संप्रज्ञात समाधि कहते हैं। भगवान् ने भी इसको कहा है—

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

काशीखण्ड में भी इसी अकार उकार मकार नाद बिन्दु को कैसा स्पष्ट कहा है—

अकाराख्यमिदं लिङ्गमुकाराख्यमतः परम् ।
मकाराह्वयमेतच्च नादाख्यं बिन्दुसंज्ञकम् ॥
पञ्चायतनमीशानमित्थमेतदुदीरितम् ।
मोक्षाय सर्वजन्तूनामस्मिन्नानन्दकानने ॥

अब ब्रह्म स्वरूपी जीव बिन्दु को भी लय करते करते आज्ञाचक्र रूपी जो चित्र दर्पण है जिसमें कि चित्प्रतिबिम्बित हुआ था उसको भेद कर परब्रह्म में मिल गया अर्थात् चित् चिदाभास एक होने के कारण वह असम्प्रज्ञात समाधि में स्थित हुआ। अब यहां पर विचारणीय यह है कि आज्ञाचक्र से सहस्रार-चक्र तक जो एक शून्य का प्रवाह है उसका संचार तथा स्पन्दन न होने के कारण भगवान् ने उसको विकर्म कहा है।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यञ्च विकर्मणः ।

अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥

कर्म अकर्म तथा विकर्म तीनों का रहस्य जानना चाहिये। मणिपूर से मायाचक्र तक हंस का प्रवाह कर्म अर्थात् कर्मकाण्ड है। मायाचक्र से आज्ञाचक्र तक सोऽहं का प्रवाह अकर्म अर्थात् ज्ञान काण्ड है। आज्ञाचक्र से सहस्रारचक्र तक जो प्रवाह है वह विकर्म है इस प्रवाह में स्थित योगी सहस्रार-चक्रस्थ ब्रह्मरन्ध्र को भेद कर बाहर निकल जाता है और निर्वाण पदवी को प्राप्त करता है। अत्यन्त संक्षेप से योगी पुरुषों की इस दिव्य गति का निरूपण किया कोई सज्जन हमारे इस लेख का दुरुपयोग न करे क्यों कि यह विषय किसी की बुद्धि में जल्दी आ नहीं सकता इसको तो महापुरुषों की कृपा के कुछ प्रसाद प्राप्त होने पर ही जान सकता है। इस लिये इससे कोई बाह्य पूजा पाठ आदि का त्याग न करे क्यों कि जब तक हमारा स्थूल शरीर है और उसमें हमारा अध्यास है तब तक बाह्य पूजा बाध्य होकर करनी ही पड़ेगी। किन्तु इसका फल स्वर्ग ही है भगवान् ने कहा है। **ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥** मोक्ष नही हो सकता क्योंकि मोक्ष आत्म-ज्ञान से होता है और आत्मज्ञान तभी होगा जब जीव योगसा-धन से पंच कोष के बाहर निकल कर काशी को प्राप्त कर लेगा और वह काशी हमारे शरीर के भीतर ही है। **काशीखण्ड पूर्वार्ध में देखिये।**

स होवाचेति जावालिरारुणेऽसिरिडा मता ।
वरणा पिङ्गला नाडी तदन्तस्त्वविमुक्तकम् ॥५।२५॥
सा सुषुम्ना परा नाडी त्रयं वाराणसी त्वसौ ।५।२६।

दूसरी बात यह है कि काशी को भूलोक भुवर्लोक स्वर्गलोक के ऊपर कहा है—

भूमिष्ठाऽपि न यात्र भूस्त्रिदिवतोप्युच्चैरधः स्थाऽपि या ।

ठीक है मूलाधार से नाभिचक्र तक भूलोक है "**भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्याम्** । नाभिचक्र से विशुद्धाख्यतक भुवर्लोक है "**भुवर्लोकोऽस्य नाभितः**" विशुद्धाख्य से मायाचक्र तक स्वर्ग लोक है ऐसा मानने पर सभी वाक्यों का समन्वय हो जाता है ।

येषां कुत्र गतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगतिः ।

अभिप्राय यह है जो भूलोक अर्थात् पातालादि लोकों में गति कर चुका जो भुवर्लोक अर्थात् मर्त्यलोक में गति कर चुका जो स्वर्गलोक में भी गति कर चुका अब जिसको कहीं गति करने का स्थान नहीं है वह काशी क्षेत्र में गति करे अर्थात् मायाचक्र के बाहर कारण शरीर में सोऽहं की गति करे। मायाचक्र के नीचे तो तीनों लोक घोर अन्धकार से व्याप्त हैं नेत्र बन्द करके देख लीजिये इसी लिये हमारे सदृश सभी जन्तुओं को भ्रम होता है भगवान् ने कहा है—

---

(१) द्यावाभूमिः

अज्ञानेनावृता लोकास्तेन मुह्यन्ति जन्तवः।

अज्ञानेनान्धकारेण लोकास्त्रयो लोका भूर्भुवःस्वर्गाख्या आवृताः पूर्णास्तेन कारणेन जन्तवो देहात्मविशिष्टबोधवन्तो मुह्यन्ति रज्जौ सर्पबुद्धिवत्।

काशी में अन्धकार का लेश मात्र भी नहीं है क्योंकि काशी की व्युत्पत्ति ही यही है—

अनाख्येयं स्वप्रकाशं चैतन्यं प्रकाशतेऽस्यामिति काशी।

लिखा भी है—

काशतेऽत्र यतो ज्योतिस्तदनाख्येयमीश्वरः।
अतो नामाऽपरं चास्तु काशीति प्रथितं प्रभो ॥का.खं.

यहाँ तो अन्धकार भी हो जाता है तब काशी की स्थिति कहां पर है इसको विद्वान् पुरुष पूर्वोक्त प्रमाणों से समझ ही लेंगे यदि उनकी पुराणों पर आस्था होगी तुष्यतु दुर्जनः, इस न्याय का अनुसरण कर अब हम ऐसा प्रमाण देवेंगे जिससे कोई भी तर्क नहीं कर सकता सुनिये—

भगवान् ने यहां तक कहा है कि योगी को छोड़ कर और कोई भी पुरुष काशी को देख नहीं सकता प्राप्त करना तो बहुत दूर है।

क्षेत्रमेतत्त्रिशूलाग्रे शूलिनस्तिष्ठति द्विज।
अन्तरिक्षे न भूमिष्ठं नेक्षन्ते मूढबुद्धयः॥

---

(१) ७ चित्र में देखिये।

भूर्लोके न च संलग्नमन्तरिक्षे ममालयम् ।
विमूढास्तं न पश्यन्ति मुक्ताःपश्यन्ति चेतसा ॥
भूर्लोके न च संलग्नं तत्क्षेत्रं त्वन्तरिक्षगम् ।
अयोगिनो न वीक्षन्ते पश्यन्त्येव च योगिनः ॥ का.खं

(अस्तु) योगी पुरुषों की अलौकिक गति होती है उनके समक्ष बाह्य पदार्थों का अस्तित्व ही नहीं रह जाता तो फिर उनसे बाह्य पूजन भी होना असंभव है इसी कारण उत्तर गीता में कहा है—

तीर्थानि तोयरूपाणि देवान्पाषाणमृण्मयान् ।
योगिनो न प्रपद्यन्ते स्वात्मध्यानपरायणाः ॥

हम लोग भी यदि इस काशी को प्राप्त करना चाहें तो बाह्य काशी तथा देवताओं में जितना प्रेम बढ़ाते जायेंगे उतनी ही जल्दी अन्तर्गति प्राप्त कर आनन्द लाभ करेंगे क्योंकि जो बाहर से भगवान् को चाहता है उसी की भगवान् अन्तर्गति करते हैं ।

हमने बड़े परिश्रम से संसार के कल्याणार्थ बाबा के अमूल्य उपदेश को पुराणादि शास्त्रों से समन्वय करके इस भूमिका में लिखा है इसका सब विषय अलौकिक ही है इसी कारण **गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज बनारस के भूतपूर्व प्रिन्सिपल योगशास्त्र के गूढ़ रहस्य जानने वाले महामहोपाध्याय श्रीगोपीनाथ कविराज जी ने बड़े प्रेम से आद्यन्त इसका**

अक्षरशः विचार पूर्वक अवलोकन किया है तथा आपने कहा है कि यह एक नवीन शास्त्र निकल रहा है इसको जोड़ी का अद्यावधि योग विषयक शास्त्र देखने में नहीं आया इस प्रकार आपने मुक्त-कण्ठ से इस ग्रन्थ की प्रशंसा करते हुये मुझको इसके संग्रह के लिये प्रोत्साहित किया है तथा आपने अपना अमूल्य समय लगा कर प्रूफों के संशोधन में भी मुझको सहायता दी ह। और अपना भावपूर्ण मन्तव्य देकर इस पुस्तक को अपनाया है हम आपके घोर परिश्रमके ऋणी होते हुये सहर्ष कोटिशः आपको धन्यवाद देते हैं तथा भगवान् से अनवरत प्रार्थना करते हैं कि इस परिश्रम के फलस्वरूप में भगवान् आप की योग संम्बन्धी क्रिया में प्रति दिन उन्नति करें। **काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीदामोदरशास्त्री गोस्वामी जी ने भी इस पुस्तक का आद्यन्त अवलोकन किया है** तथा इसके संग्रह के लिये जनता से अनुरोध कर अपना हार्दिक प्रेम मन्तव्य द्वारा प्रकट कर पुस्तक की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। हम आपको भी सहर्ष हृदय से कोटिशः धन्यवाद देते हुये बाबा का स्मरण कर इस लेख को अपूर्ण ही रखते हैं। जय गुरु जय गुरु जय गुरु।

बाबा दया करो बाबा दया करो बाबा दया करो।

बाबा का एक सेवक

राममूर्ति शास्त्री

❀ ॐ तत्सत् ❀

* योगश्रेष्ठत्वे *

कतिपयशास्त्रीयप्रमाणानि

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ गी.॥

यावद्देहे स्थितः प्राणो जीवितं तावदुच्यते ।
निर्गते तत्र मरणं ततः प्राणं निरुन्धयेत् ॥का.खं.

चलेऽनिले चलं सर्वं निश्चले तत्र निश्चलम् ।
स्थाणुत्वमाप्नुयाद्योगी ततोऽनिलनिरुन्धनात् ॥ का.॥

यावद्बद्धो मरुद्देहे यावच्चेतो निराश्रयम् ।
यावद्दृष्टिर्भ्रुवोर्मध्ये तावत्कालभयं कुतः ॥ का.॥

कालसाध्वसतो ब्रह्मा प्राणायामं सदाचरत् ।
योगिनः सिद्धिमापन्नाः सम्यक्प्राणनियन्त्रणात् ॥ का॥.

ब्रह्मादयोऽपि त्रिदशाःपवनाभ्यासयोगतः ।
तेन सिद्धिं गतास्ते च तस्मात्पवनमभ्यसेत् ॥का.टी.॥

षट्त्रिंशदङ्गुलो हंसः प्रयाणं कुरुते बहिः ।
सव्यापसव्यमार्गेण प्रयाणात्प्राण उच्यते ॥का.खं.॥

प्राणो देहगतो वायुरायामस्तन्निबन्धनम् ।
एकश्वासमयी मात्रा प्राणायामो निरुच्यते ॥का.॥

प्राणायामेऽधमे घर्मः कम्पो भवति मध्यमे ।
उत्तिष्ठेदुत्तमे देहो बद्धपद्मासनो मुहुः ॥

पवने व्योमसंप्राप्ते ध्वनिरुत्पद्यते महान् ।
घण्टादीनां प्रवाद्यानां ततः सिद्धिरदूरतः ॥का.॥

प्राणायामैर्विना देवि कृतं कर्म निरर्थकम् । तन्त्र

प्राणायामात्परं तत्त्वं प्राणायामात्परं तपः ।
प्राणायामात्परं ज्ञानं प्राणायामात्परं पदम् ॥ तन्त्र

प्राणापानवशो जीव ऊर्ध्वाधः परिधावति ।
वामदक्षिणमार्गेण चञ्चलो न स्थितिं लभेत् ॥ का.खं.

गुणबद्धो यथा पक्षी गतोऽप्याकृष्यते पुनः ।
गुणैर्बद्धस्तथा जीवः प्राणायामेन कृष्यते ॥

अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानं च कर्षति ।
ऊर्ध्वाधः संस्थितावेतौ संयोजयति योगवित् ॥

अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानं च कर्षति ।
सोऽहं हंसः पदेनैव जीवो जपति सर्वदा ॥

षट् शतानि दिवा रात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः ।
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥ का.खं.

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥गी.॥

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥गी.॥

प्रणवाख्यं परंब्रह्म यत्र नित्यं प्रकाशते ।
स पञ्चायतनोपेत ओङ्कारेशोऽयमद्भुतः ॥का.खं.

अश्च उश्च मकारश्च नादो बिन्दुश्च पञ्चमः ।
पञ्चाक्षरं परंब्रह्म यत्र नित्यं प्रकाशते ॥

ओङ्कारं प्रणवं सारं परं ब्रह्मप्रकाशकम् ।
शब्दब्रह्म त्रयीरूपं नादबिन्दुकलालयम् ॥

अकारस्त्वमुकारस्त्वं मकारस्त्वमनाकृते ।
ऋग्यजुःसामरूपाय रूपातीताय ते नमः ॥

नमो नादात्मने तुभ्यं नमो बिन्दुकलात्मने ।
अलिङ्गलिङ्गरूपाय सर्वरूपस्वरूपिणे ॥का.खं.

गुरोः सकाशादपि वेदवाक्यतः संजातविद्यानुभवो निरीक्ष्य तम् ।
स्वात्मानमात्मस्थमुपाधिवर्जितं त्यजेदशेषं जडमात्मगोचरम् ॥रा.गी.॥
पूर्वं समाधेरखिलं विचिन्तयेदोङ्कारमात्रं सचराचरं जगत् ।
तदेव वाच्यं प्रणवो हि वाचको विभाव्यतेऽज्ञानवशान्न बोधतः ॥
अकारसंज्ञः पुरुषो हि विश्वक उकारकस्तैजस इज्यते क्रमात् ।
प्राज्ञो मकारः परिपठ्यतेऽखिलैः समाधिपूर्वं न च तत्परस्तात् ॥
विश्वं त्वकारं पुरुषं विलापयेदुकारमध्ये बहुधा व्यवस्थितम् ।
ततो मकारे प्रविलाप्य तैजसं द्वितीयवर्णं प्रणवस्य चान्तिमे ॥
मकारमप्यात्मनि चिद्घने परे विलापयेत्प्राज्ञमपीह कारणे ।
सोऽहं परंब्रह्म सदा विमुक्तिमद्विज्ञानदृङ्मुक्त उपाधितोऽमलः ॥
विविक्त आसीन उपारतेन्द्रियो विनिर्जितात्मा विमलान्तराशयः ।

विभावयेदेकमनन्यसाधनो विज्ञानदृक् केवलमात्मसंस्थितः ॥
विश्वं यदेतत्परमात्मदर्शनं विलापयेदात्मनि सर्वकारणे ।
पूर्णश्चिदानन्दमयोऽवतिष्ठते न वेद बाह्यं न च किञ्चिदन्तरम् ॥रा.गी.॥

मनोऽन्यत्र शिवोऽन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः ।
इदं तीर्थमिदं तीर्थं भ्रमन्तस्तामसा जनाः ॥
आत्मतीर्थं न जानन्ति कथं मोक्षो वरानने । (तन्त्र)

बहिर्मुखानि सर्वाणि कृत्वा चाभ्यन्तराणि च
मनस्येवेन्द्रियग्रामं मनश्चात्मनि योजयेत् ।का.खं.
सर्वभावविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत् ।
एतद्ध्यानं च योगश्च शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः ॥का.खं.

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् । भा.
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥
रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा ।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ॥
भा. पं. स्कं. १२।११।१२

संयोगस्त्वात्ममनसोर्योग इत्युच्यते बुधैः ।
प्राणापानसमायोगो योग इत्यपि कैश्चन ॥का.खं.

योजनानां शतं यातुं शक्तिः स्यान्निमिषार्धतः ।
अचिन्ततानि शास्त्राणि कण्ठपाठीभवन्ति हि ।
धारणाशक्तिरत्युग्रा महाभारो लघुर्भवेत् ।
क्षणं कृशः क्षणं स्थूलः क्षणमल्पः क्षणं महान् ॥
परकायं प्रविशति तिरश्चां वेत्ति भाषितम् ।
दिव्यंगन्धं तनौ धत्ते दिव्यां वाणीं प्रवक्ति च ॥

योगी महापुरुषों की अलौकिक वाणी

तुलसीदास

नरतन भव वारिधि कर बेड़ो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
कर्णधार सद्गुरु दृढ़नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
सो नर इन्द्रजाल नहिं भूला। जापर सोइ नट होय अनुकूला॥
अति हरि कृपा जाहि पर होई। एहि[1] मारग पग देवै सोई॥
सोइ जाना जेहि देहु जनाई। जानत तुम्है तुमहिं ह्वै जाई॥
जेहि जाने जग जात हेराई। जागे यथा सपन भ्रम जाई॥
नाम निरूपन नाम यतन ते। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन ते॥
मज्जन के फल मिलहिं तत्काला। काक पिकहु वक होय मराला॥

मलूकदास

मरना है दुई भांति का जो मर जाने कोय।
राम दुआरे जो मरे तो बहुरि न मरना होय॥
कृत्तिम देव न पूजिये ठेस लगे फूट जाय।
कहे मलूक शुभ आतमा चारो जुग ठहराय॥
आतम राम न चीनही पूजत फिरै पषान।
कैसेहु मुक्ति न होयगी कोटिक सुनौ पुरान॥
जेते देखे आतमा ते ते सालिग राम।
बोलन हारा पूजिये पत्थर से क्या काम॥

---

१ सोहंगतिरूपज्ञानमार्ग।

नानक

शब्दी गुरु कै मजनु सदा त्रिवेणी। शब्दी गुरु सुखमणि सुख देणी ॥
शब्दी गुरु कै दूर न जाणो। नानक शब्दी गुरु कै पदि पिण्ड समाणो ॥
शब्दी गुरु कै विनु अंखि सूझै। शब्दी गुरु कै विनु बोलै बूझै ॥
शब्दी गुरु से जो मनु लावै। नानक सो जन परम पद पावै ॥
ऊंचे खण्डे रहे लिउ लागी। नान्हक कहिये सो वैरागी ॥
मूल चापि राखे वैरागी। गगन सुन्नि अनहदि लिउ लागी ॥
पंचा थामि करै असवारी। नान्हक सहजे मिलै मुरारी ॥
गरजि गरजि बरषै नित गगना। पच्छिम पवन उलटि मन मगना ॥

कबीरदास

शब्दहि कुंजी शब्दहि ताला शब्दै शब्द भया उजियाला।

राम नाम जिन जानिया छोनी पिञ्जर तासु।
नैन न आवै नीदड़ी अङ्ग न जामे मासु ॥
मरते मरते जग मरा मरै न जानै कोय।
ऐसा होय के ना मरा कि फिर न मरना होय ॥
मरना होय मर रहिये छूटे सकल जञ्जार।
ऐसा मरना कौन मरै दिन में सौ सौ बार ॥
पहिला दाता सिख भया तन मन अर्पा सीस।
दुसरा दाता गुरु भया नाम दिया बखशीश ॥
जा मरने से जग डरे मेरे मन आनन्द।
कब मरिहों कब पाइहों पूरन परमानन्द ॥

वैद मुआ रोगी मुआ मुआ सकल संसार।
एक कबीरा ना मुआ जाके नाम अधार॥

ओंकार आदिहि जो जाने। लिखिकर मेटि ताहि पुनि माने॥
वे ओंकार कहे सब कोई। जिन वो लखा सो विरलै होई॥

कृपादास

पूरब से पच्छिम चढ़ै करै पिया से गौन।
सुरत समानी शब्द में अब बोलेगा कौन॥
पवन के भीतर राह है करै पिया से गौन।
धरती और अकास है तेहि के भीतर पौन॥
देखे अलख अगाध को अमृत फलको खाय।
कृपादास जीते मरे तब वह घर को जाय॥
सात सुन्न जब ही लखै अर्ध्व महल चढ़ि जाय।
जब देखै निज नाम को नहि आवे नहि जाय॥

कीनाराम बाबा

दूजे दूर करै मन दुविधा रजगुण तमगुण त्यागै।
ऊर्ध कमल पीतम से परिचै तब ही आतम जागै॥

शुद्धिपत्र

(पञ्चम चित्र रहस्य)

शुद्ध	अशुद्ध
देवतर्पण प्रारम्भ	ऋषितर्पण प्रारम्भ
तमोगुण का प्रत्याहार	तमोगुण का त्याग

(द्वितीय दीक्षा)

कुलीन	कौल

(तृतीय दीक्षा)

ब्रह्म	कुलीन

(प्रथम भाग ४० श्लोक तृतीय चरण में)

न मुक्ता	विनाऽमौ

* श्रीः *

सद्गुरुबाणी

प्रथमभाग

प्रश्न

गुरू शिष्य काको कहे, दीक्षा काको कहाय।
बिना गुरू शिष्य काहे माया पार नहीं जाय॥

शिष्यं गुरुं कं कथयन्ति लोके
दीक्षापदार्थं निगदन्ति कं वा।
गुरुं विनैतां कथमेष शिष्यो
मायामतिक्रम्य न पारमृच्छेत्॥ १॥

उत्तर

ब्रह्म गुरू जीव शिष्य, दीक्षा शक्ती का संचार।
ऊर्ध्वगती बिना जीव माया चक्र न होवे पार॥

तद्ब्रह्म[1] जीवो गुरुरस्ति शिष्यो
यः शक्तिसंचार इयं सुदीक्षा।

---

१ तद्ब्रह्मगुरु र्जीवः शिष्य इति क्रमेणान्वयः।

जीवः कदाप्यूर्ध्वगतिं विनाऽसौ-
मायाख्यचक्रान्न च पारमृच्छेत् ॥२॥

—❀—

निर्गुण गुरू सगुण चेला, माया रोके द्वार ।
बिना गुरू कबहूँ नहीं शिष्य जाय वही पार ॥

शिष्यो गुरुः सन्[1] सगुणोऽगुणश्च
द्वारं करोत्यावृतमत्र माया ।
विना गुरुं जीवपदाभिधानः
प्रयाति पारं न कदापि शिष्यः ॥३॥

—❀—

माया चक्र के उस पार में जीव का वासा होय ।
चक्र भेद अपने घर में कबहूँ न पहुँचे सोय ॥

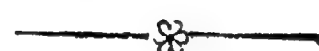
मायाख्यचक्रात्परतोऽस्ति पूर्वं
जीवस्य वासो निजबोधरूपः ।
मायात्मकं चक्रमिदं प्रभिद्य
कदापि गेहं न स याति जीवः ॥४॥

—❀—

आज्ञा चक्र के उस पार हैं परब्रह्म का स्थान ।
सच्चिदानन्द स्वरूप उनका निश्चय कर तू जान ॥

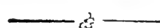
१ सन् गुरुः सद्गुरुरित्यर्थः।

आज्ञाख्यचक्रात्परतोऽस्ति दिव्यं
स्थानं परब्रह्मण एव नित्यम् ।
त्वं सच्चिदानन्दमयं स्वरूपं
जानीहि नित्यं खलु तस्य सत्यम् ॥५॥



आज्ञा चक्र में महामाया चित् शक्ति को जान ।
चेतन शक्ति स्वरूपा वह, कबहूँ नाहीं आन ॥

आज्ञाख्यचक्रेऽस्ति महादिमाया
तामेव चिच्छक्तिमवेहि नूनम् ।
सा वर्तते चेतनशक्तिरूपा
कदापि नान्या भवतीह शक्तिः ॥६॥



चित् शक्ति में चित् जब की प्रतिविम्बित होय ।
चिदाभास स्वरूप से ब्रह्म कहावे सोय ॥

यदैव चिद्ब्रह्म सुखस्वरूपं
चिच्छक्तिमध्ये प्रतिविम्बितं स्यात् ।
आभासचैतन्यसरूपतस्तद्
ब्रह्मैव सर्वत्र निरूपितं स्यात् ॥७॥



वही ब्रह्मका संकल्प से, माया का संग होय ।
तीन गुण का संग होकर, जीव कहावे सोय ॥

संकल्पतो ब्रह्मण एव तस्य
मायाकृतोऽयं भवतीह सङ्गः ।
सङ्गं समासाद्य गुणत्रयस्य
स्याद्ब्रह्म तज्जीवपदाभिधानम् ॥८॥



संकल्प से महामाया, दो प्रकार की होय ।
योगमाया भोगमाया, भिन्न कहावे सोय ॥

संकल्पमात्राद्गुरुचक्रनिष्ठा
महादिमाया द्विविधा कृता या ।
सा योगमायाऽपि च भोगमाया
निरूपिता योगिभिरेव भिन्ना ॥९॥



जडशक्ति ही योगमाया, चेतन भोगमाया ।
दोनो माया दुई नहीं है, एक ही महामाया ॥

सा योगमाया जडशक्तिरूपा
चैतन्यरूपाऽस्ति च भोगमाया ।

द्वैविध्यमस्तीत्यनयोर्नेकिञ्चिन्-
महादिमायैव सदैकरूपा ॥१०॥

—❀—

योगमाया जडशक्ति, गती नाहीं होय ।
महामाया संग मिल के गती करत है सोय ॥

या योगमाया जडशक्तिरूपा
तस्या गतिर्नैव भवेत्कदापि ।
याऽस्ति प्रधानात्ममहादिमाया
तत्सङ्गहेतोर्गतिरस्ति तस्याः ॥११॥

—❀—

जड़ चेतन के एक होवे, योगमाया दुई होय ।
अविद्या व विद्यामाया तभी कहावे सोय ॥

जडेन चैतन्यमथो यदैकं
स्याद्योगमाया द्विविधैव शक्तिः ।
विद्यात्मिकैका कथिता हि मायाऽ-
विद्यात्मिका सैव तथा तदाऽन्या ॥१२॥

—❀—

रजोगुण व तमोगुण में जड अविद्या जान ।
सत्त्वगुण में चेतनशक्ती विद्याको पहिचान ॥

रजोगुणे वाऽथ तमोगुणेऽस्मिञ्-
जडामविद्यां समवेहि नूनम् ।
सत्वात्मके त्वं गुण एव विद्यां
जानीहि तां चेतनशक्तिरूपाम् ॥१३॥

—❀—

अविद्या के संग होवे जीवका बन्धन ।
मुक्त होवे विद्या संग से, अपने घर गमन ॥

सङ्गादविद्याविहितान्नितान्तं
जीवस्य बन्धोऽस्ति यथार्थमेतत् ।
विद्याकृतं सङ्गमवाप्य मुक्तो
गेहं स्वकीयं समुपैति जीवः ॥ १४ ॥

—❀—

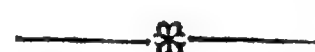
अविद्या संग मन रहत है, मन के संग है जीव ।
विद्या संग होवे बिना कबहु न पावे पीव ॥

अविद्यया सार्धमिदं मनोऽस्ति
जीवो हि सार्धं मनसाऽस्ति नित्यम् ।
विद्याप्रसङ्गं न विना कदापि
प्राप्नोति जीवः पतिमीश्वरं तम् ॥१५॥

—❀—

अविद्या संग छोड़े बिना विद्या संग नहीं होय ।
बिना गुरु ऊर्ध्वगती कबहूँ न पावे कोय ॥

अविद्यया सङ्गमिमं न मुक्त्वा
न विद्यया तस्य भवेद्धि सङ्गः ।
विना गुरुं नोर्ध्वगतिं कदापि
प्राप्नोति शिष्यः खलु जीवरूपः ॥१६॥



प्रणवरूपी सत् गुरु का आज्ञा चक्र में वास ।
ओंकार का संग करायके पुरावे जीव की आस ॥

ओङ्काररूपस्य गुरोः सतोऽस्मि-
न्नाज्ञाख्यचक्रे नियमेन वासः ।
स कारयित्वा प्रणवस्य सङ्गं
पिपर्ति जीवस्य सदाऽभिलाषम् ॥१७॥



माया चक्र से नाभिचक्र तक ओंकारका स्थान ।
अ उ म तीन शब्द को भिन्न भिन्न पहिचान ॥

मायाख्यचक्रात्किल नाभिचक्र-
पर्यन्तमस्ति प्रणवस्य वासः ।

अश्चैवमुश्चास्ति मकारशब्दो
जानीहि शब्दत्रयमत्र भिन्नम् ॥ १८ ॥

—❀—

अनाहत शब्द ओंकार को सत्त्वगुण में जान ।
सगुणरूपो ईश्वर का उसी में है स्थान ॥

शब्दं त्वमोङ्कारमनाहताख्यं
जानीहि तं सत्त्वगुणे निविष्टम् ।
तत्रैव सूर्यायुततुल्यधाम
धामाऽस्ति दिव्यं सगुणेश्वरस्य ॥१९॥

—❀—

वही ईश्वर हमहीं हैं, और न दूजा कोय ।
विद्यामाया के संग वास, जाने योगी होय ॥

अहं स एवेश्वररूपधारी
न कश्चिदन्यः परमार्थतोऽस्ति ।
जीवस्य वासः सहविद्यया यो
जानन्ति सन्तो भुवि योगिनस्तम् ॥२०॥

—❀—

ओंकार के तीनशब्द में तीन वेद रहाय ।
ऋक् यजुः साम नाम से तीन पाद कहाय ॥

ओङ्कारशब्दत्रयमध्य एव
वेदत्रयस्याऽस्ति सदा प्रतिष्ठा ।
ऋग्वा यजुः साम समाख्ययेति
पादत्रयं तस्य गदन्ति सन्तः ॥२१॥

शब्दात्मक ओङ्कार की डोरी को पहिचान।
शून्य की वह डोरी बनी है मनिया के समान॥
शब्दात्मकस्य प्रणवस्य सूत्रं
जानीहि जीवात्मकशिष्यवर्य्य ।
शून्यैरिदं निर्मितमस्ति सूत्रं
विचित्ररूपं गुटिकासमानम् ॥२२॥

———❀———

मणिपूर से अनाहत तक प्रथम पाद का स्थान।
अकारात्मक ऋग् वेद तू उसी को पहिचान॥
अनाहतान्तं मणिपूरचक्रात्
स्थानं पदः प्राथमिकस्य शस्तम् ।
त्वं तत्र ऋग्वेदमकारसंज्ञं
तमेव जानीहि विचार्य जीव ॥२३॥

१ यजुश्च ऋक् । इति पाठः ।

अनाहत से विशुद्धाख्य तक द्वितीय पाद तू जान ।
उकारात्मक यजुर्वेद को निश्चय कर तू मान ॥

विशुद्धचक्रान्तमनाहतात्त्वं
द्वितीयपादं समवेहि नूनम् ।
एतं यजुर्वेदमुकारसंज्ञं
निश्चित्य मन्यस्व यथार्थमेतत् ॥२४॥

विशुद्धाख्य से मायाचक्र तक तृतीय पाद रहाय ।
मकारात्मक सामवेद तो उसी को कहाय ॥

मायाख्यचक्रान्तमतो विशुद्धा-
च्चक्रात्तृतीयं कथयन्ति पादम् ।
सन्तो मकारात्मकसामवेदं
तमेव विज्ञाः समुदाहरन्ति ॥ २५ ॥

विश्व तैजस प्राज्ञ नाम से उन्ही को तू जान ।
तीन पाद मे तीन गुण सदा वर्तमान ॥

विश्वाख्यया तैजसनामतश्च
प्राज्ञाख्यया तान्समवेहि जीव ।

त्रिष्वेव पादेषु सदा स्थितास्ते
गुणास्त्रयः सत्त्वरजस्तमांसि ॥ २६ ॥



तीस मात्रा ओंकार की तीन पाद मे होय ।
हर एक पाद में दस मात्रा जाने योगी कोय ॥

त्रिंशद्धि मात्राः प्रणवस्य शिष्य
त्रिष्वेव पादेषु भवन्ति नूनम् ।
प्रत्येकपादे दशसंख्यका या
जानन्ति मात्राः किल योगिनस्ताः॥७॥



हंस मंत्र से ओंकार का उच्चारण होय ।
नाभिचक्र से मायाचक्र तक आवे जावे सोय ॥

शब्दात्मकस्य प्रणवस्य तस्या-
दुच्चारणं हंसपदाद्यथावत् ।
मायाख्यचक्रावधि नाभिचक्रा-
त्तत्सूत्रमायाति च याति नूनम् ॥२८॥



'हं' शब्द से नीचे आवे 'सो' से ऊपर जाय ।
संचार व प्रत्याहार ताही को कहाय ॥

आयाति 'हं' शब्दत एव नीचैः
'सो' शब्दतो गच्छति चोर्ध्वमेव ।
संचारमेनं कथयन्ति सन्तः
प्रत्याहृतं वाप्यथ योगिवर्य्याः ॥२९॥



मातृगर्भ में जीव का जब होवे अवस्थान ।
इसी प्रकार से ओंकार की गती निश्चय जान ॥

यदैव जीवस्य भवेन्निवासो
विनिश्चयं मातृविचित्रगर्भे ।
पूर्वोक्तरीत्याऽस्य गतिं तदैव
शब्दात्मकस्य प्रणवस्य विद्धि ॥३०।

ईश जीव की तत्काल में गती एकैहोय ।
चेतन छोड़ के जीव तव ही और न जाने कोय ॥

तदा प्रभृत्येव भवत्यवश्यं
जीवेशयोरेकगतिर्यथावत् ।
विनाहि चैतन्यमसौ तदैव
जानाति जीवो न च किञ्चिदन्यत् ॥३१॥



लेकिन जव की मातृगर्भ से वाहर आवे जीव ।
अविद्या के संग होवे छूट जात है पीव ॥

परन्तु जीवो यदि मातृगर्भा-
द्बहिः समायाति तदैव शिष्य ।
अविद्यया सङ्गमवाप्य सोऽपि
वियुज्यते तेन निजेश्वरेण ॥३२॥

चेतन का सङ्ग छूट जात व जड़ का सङ्ग तव होय ।
ईश्वर का सङ्ग छूट जात तव दुखी होय के रोय ॥

यदा भवेच्चेतनसङ्गशून्य-
स्तदैव नित्यं जडसङ्गबद्धः ।
यदा भवेदीश्वरसङ्गमुक्तो
जीवस्तदा रोदिति दुःखतप्तः ॥३३॥

जड़ शरीर में आत्मबोध अविद्या सङ्ग से होय ।
अपने रूपको भूल जात व अज्ञान होयके सोय ॥

जडात्मके तुच्छकलेवरेऽस्मि-
न्नविद्यया सङ्गत आत्मबोधः ।

रूपं स तद्विस्मरति स्वकीयं
शेते तदाऽज्ञानवशो हि जीवः ॥३४॥

———❀———

अविद्या सङ्ग सपने में वह संसारबोध करे ।
रजोगुण में गती होवे जन्माय और मरे ॥
स्वप्ने त्वविद्यावशतो हि जीवः
संसारबोधं कुरुते नितान्तम् ।
रजोगुणान्तर्गतिकारणाद्वा
संजायतेऽसौ म्रियतेऽत्र नित्यम् ॥३५॥

———❀———

जड़ शरीर का नाश होवे आत्मा नाश नहीं होय ।
देहाभिमानी जीव कबहूँ नहीं समझे सोय ॥
कलेवरस्यास्य जडस्य नाश-
स्तस्यात्मनो नैव भवेद्विनाशः ।
देहाभिमानी खलु जीव एष
कदापि जानाति न तद्रहस्यम् ॥३६॥

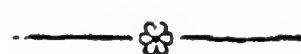
———❀———

मिथ्याभ्रम से बार बार वह करत है संसार ।
अज्ञान से जीव त्रितापज्वाला सहे बारंबार ॥

मिथ्याभ्रमादेव पुनः पुनश्च
करोति संसारविलासमात्रम् ।
अज्ञानतः केवलमेष जीव-
स्तापत्रयं वा सहते नितान्तम् ॥३७॥



सत्त्वगुणात्मकहंसशब्द में गति कबहुँ न होय ।
बिना गुरू दीक्षा दिये कबहूँ न पावे कोय ॥
अस्मिन्गतिः सत्त्वगुणात्मकेऽस्य
कदापि न स्यात्खलु हंसशब्दे ।
दीक्षां विना तस्य गुरोः सकाशात्
कदाप्यवाप्नोति न हंसमन्त्रम् ॥३८॥



बाहर भीतर आवेजावे ठहरे नहीं एक बार ।
हंस की डोरी पावे बिना कबहूँ न उतरे पार ॥
अन्तश्च बाह्ये गतिरागतिः स्यात्
कदापि न स्यात्स्थितिरेकवारम् ।
हंसात्मकं सूत्रमिदं न लब्ध्वा
गच्छेत्स पारं न कदापि जीवः ॥३९॥

इसी प्रकार से बार बार आवे जावे सोय।
अविद्या सङ्ग छोड़े बिना ज्ञान कबहूँ न होय॥

एवं प्रकारेण सदैव जीव
आयाति वाह्ये पुनरन्तरेति।
अविद्यया सङ्गमिमं विनाऽसौ-
लभेत बोधं न कदापि शिष्यः॥४०॥

——❀——

सत्त्वगुण में गती विना कबहुँ न होवे ज्ञान।
रजो गुण छोड़े नहीं, यह निश्चय कर तू जान॥

विना गतिं सत्त्वगुणेऽत्र नूनं
ज्ञानं न जायेत कदापि तस्य।
रजोगुणस्तं न विमुञ्चतीदं
सर्वं विजानीहि विनिश्चयेन॥ ४१॥

——❀——

वड़ी प्रवल अविद्या माया राखै जीव फसाय।
विनु सत् गुरु दीक्षा दिये कोउ न सके छुड़ाय॥

मायाऽस्त्य विद्येयमति प्रभावा
जीवं समावध्य वशीकरोति।

दीक्षां विना सद्गुरुभिः प्रदेयां
न कोऽपि तं मोचयितुं समर्थः ॥४२॥



ज्ञानचक्षू अविद्या से परदा ढांका होय।
अंधा होकर बाहर आवे राह न सूझे कोय॥

ज्ञानात्मकं चक्षुरतीव दिव्यं
सदाऽस्त्यविद्याऽऽवरणावृतं तत्।
भूत्वाऽन्ध आगच्छति सैष जीवो
गन्तव्यमार्गं न समीक्षते तम् ॥४३॥



सुषुम्ना में हंस शब्दात्मक डोरी आवे जाय।
मिथ्या सोऽहं गति कराय के माया जीव ठगाय॥

अस्यां सुषुम्नाभिधदिव्यनाड्या-
मायाति हंसात्मकसूत्रमेति।
विधाप्य सोऽ हंगतिमेव मिथ्या
जीवं सदा वञ्चयतेऽत्र माया ॥४४॥



मूलाधार तक ओंकार की गती को बढ़ाय।
दुई भाग में हंस सोऽहं दो गती कराय॥

शब्दात्मकस्य प्रणवस्य मूला-
धारान्तमावर्ध्य गतिं विचित्राम् ।
एकत्र हंसस्य गतिं द्वितीये
सोऽहंगतिं कारयतीह माया ॥४५॥

❀

हंस की डोरी जीव से तव लेत है छुड़ाय ।
मिथ्या सोऽहं की गती में राखत है भुलाय ॥

तदैव हंसात्मकसूत्रमेतज्-
जीवाद्बलात्सा ननु मोचयित्वा ।
मिथ्यैव सोऽहंगतिमध्य एव
विस्मार्य संभ्रामयतीह जीवम् ॥४६॥

❀

विचित्र यह सोहं की गति जानै नाहीं जीव ।
जनम भर वह आवे जावे कबहुं न पावे पीव ॥

सोऽहंगतिं नूनमिमां विचित्रां
जानाति जीवो नहि कोऽपि लोके ।
आयाति जन्मावधि याति सोऽयं
कदापि नाप्नोति पतिं स्वकीयम् ॥४७॥

❀

हंस में ईश व सोहं में जीव पृथक् पृथक् घुमाय ।
जन्म भर जीव चढ़ै उतरे कबहूं न देत मिलाय ॥

हंसे च सोऽहंपद ईशजीवौ
सा भ्रामयित्वा हि पृथक्पृथक्तौ ।
जन्मान्तमारोहति यात्यधस्तात्
कदापि योगं न तयोः करोति ॥४८॥

—❀—

जहां से जावे वहीं आवे लौट करके जीव ।
हंसकी डोरी कबहुं न पावे कबहुं न पावे पीव ॥

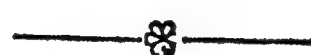
स्थानाद्यतो गच्छति जीव एष
भूयोऽपि तत्रैव निवर्तते सः ।
कदाप्यवाप्नोति न हंससूत्रं
कदापि नाप्नोति पतिं स्वकीयम् ॥४९॥

—❀—

इसी तरह ईश्वर को वह राखत है छिपाय ।
अन्धकार में चढ़ै उतरै एकौ नहीं सुझाय ॥

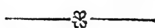
एवं प्रकारेण तमीश्वरं सा
व्यक्तं न माया कुरुतेऽन्धकारे ।

यात्यूर्ध्वमायाति पुनः स नीचैः
पश्यत्यथो किञ्चन नैव जीवः ॥५०॥



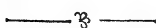
अहंकार में पागल होकर करत है संसार ।
मिथ्या को वह सत्य समझे अन्त हाहाकार ॥

विक्षिप्तभूतोऽत्यभिमानसङ्गात्
करोति संसारमयं हि जीवः ।
मिथ्यापदार्थे परमार्थबुद्धि-
रन्ते स हाहापदमुत्करोति ॥५१॥



गर्भवास यह जीव करे जब तब तीन पाद ओंकार ।
मायाचक्र से नाभीचक्र तक करत है संचार ॥

करोति जीवो यदि गर्भवासं
पादत्रयात्मा प्रणवस्तदैव ।
मायाख्यचक्रात्किल नाभिचक्रा-
वध्येव संचारमसौ करोति ॥५२॥



गर्भ से जब बाहर आवे तबही वह ओंकार ।
तीन से साढ़े पांच पाद होतहै विस्तार ॥

वहिः समायाति यदैव गर्भा-
च्छब्दस्वरूपः प्रणवस्तदैव ।
पादत्रयात्स्यादिह सार्धपञ्च-
पादात्मको विस्तरवानधस्तात् ॥५३॥



हंस शब्द की डोरी टूट कर तब दुई भाग में होय ।
हंस सोहं की विषम गति जाने योगी होय ॥

हंसात्मकं सूत्रमिदं तदैकं
छिन्नं सदंशद्वयमंशकं स्यात् ।
सोऽहंगते हंसगते विंदन्ति
वैषम्यमेतद्भुवि योगिवर्य्याः ॥५४॥



हंस के साथ प्राणवायू भीतर बाहर डोले ।
सोहं के साथ अपान वायू भीतर ही में हिले ॥

अन्तर्वहिः सञ्चरतीह वायुः
प्राणात्मको हंसपदेन सार्धम् ।

१ तदैकमंशकम् एकभागात्मकमिदं हंसात्मकं सूत्रं छिन्नं सत्, अंशद्वयं भागद्वयात्मकं स्यादित्यन्वयः ।

सोऽहंपदेनाऽपि च सार्धमन्तः
प्रस्पन्दते नूनमपानवायुः ॥५५॥

❀

चेतन शक्ती चैतन्य का दोनों में विस्तार।
सोहं का स्पन्दन होय व हंस का संचार॥

सोऽहंपदे चेतनशक्तिवृद्धि-
श्चिद्विस्तरः स्यादपि हंसशब्दे।
प्रस्पन्दनं प्राथमिकस्य शस्तं
हंसस्य वा संचरणं प्रशस्तम् ॥५६॥

❀

सोहं शब्द में चेतन शक्ती जीव को भुलाय।
मूलाधार से मणिपूर तक वृथा आवे जाय॥

सोऽहंपदे चेतनशक्तिरेषा
विस्मार्य तं जीवमिमं नितान्तम्।
सा नाभिचक्रावधि तत्र मूला-
धाराद्वृथाऽऽगच्छति याति नित्यम् ॥५७॥

❀

प्राणापान के आकर्षण से पृथक् गती होय।
हंस सोहं एक हुये विनु नाभी न भेदे कोय॥

प्राणस्य चान्योन्यमपानवायो-
राकर्षणादस्ति पृथग्गतिः सा।
न हंससोहंपदयोर्विनैक्यं
भिनत्ति कश्चिन्मणिपूरचक्रम् ॥५८॥

———❀———

नाभीचक्र में समानवायू सर्वदा रहाय।
प्राणापान को मिले नहीं देवे सदा देत हटाय ॥
समानवायु र्मणिपूरचक्रे
प्राणस्य चान्योन्यमपानवायोः।
संयोगमेनं परिबाधमानः
पृथक्पृथक्तौ विदधत्सदाऽस्ति ॥५९॥

———❀———

चित् शक्ती व माया शक्ती एकै संग मिल जाय।
नागिनरूपी कुण्डलिनी शक्ती वह कहाय ॥
मायात्मिकैषा च चिदात्मिका सा
यदैव शक्तिर्मिलितैकरूपा।
तदा भुजङ्गाकृतिरूपिणीं तां
शक्तिं बुधाः कुण्डलिनीं वदन्ति ॥६०॥

महामाया योगमाया एकात्मिका होय।
जीव को भुलाय राखै समुझै नाहीं कोय ॥

सा योगमाया च महादिमाया
भूत्वा द्वयी शक्तिरथैकरूपा ।
विस्मार्य संभ्रामयतीह जीवं
जानात्यतस्तां न हि कोऽपि जीवः ॥६१॥

मूलाधार में स्वयंभूलिङ्ग को वेष्टन करके सूता।
कुण्डलाकार साढ़े तीन पेंच जीव न पावे पता ॥

लिङ्गं स्वयंभ्वाख्यमधस्थमूला-
धारे संमावेष्ट्य सदैव शेते ।
सार्धत्रयावर्तनरूपिणी सा
जीवो न तां लक्षयतीति चित्रम् ॥६२॥

आठ पेंच लपेटै आपको मुखसे पोंछ को थामे ।
मन के संग जीव उसी में नीचे ऊपर घूमे ।

स्वं[1]मष्टधा कुण्डलितं विधाय
निवेश्य पुच्छं स्वमुखे स्थिता सा ।

---

१ स्वःस्यात्पुंस्यात्मनि । इति कोषप्रामाण्यात्पुंस्त्वम् ।

तत्रैष जीवो मनसैव सार्धम्
उपर्यधो भ्राम्यति नित्यमेव ॥६३॥



इच्छा ज्ञान क्रियात्मिका सोई शक्ती होय ।
माया निद्रावश में जीव नाहीं चीन्हे सोय ॥

इच्छात्मिका सैव च बोधरूपा
क्रियात्मिका संभवतीह शक्तिः ।
मायात्मनिद्रावशगः स जीव-
स्तामेव शक्तिं न कदापि वेत्ति ॥६४॥



वही शक्ती इच्छाशक्ती स्वरूप से है मन ।
अविद्या संग जीवको मिथ्या करावे भ्रमन ॥

इच्छात्मशक्तेर्ननु रूपतः सा
मनःस्वरूपाऽपि च शक्तिरस्ति ।
अविद्ययाऽऽसादितसङ्गमेवं
जीवं सदा भ्रामयतीह मिथ्या ॥६५॥



मुख से अपने दूसरी एक सांपिन पैदा करे ।
मेरुदण्ड के दाहिने बांयें वह उतरे और चढ़े ॥

अन्यामपूर्वां निजवक्त्रतः सा
शक्तिं समुत्पाद्य भुजङ्गरूपाम् ।
आयात्यधस्तात्पुनरूर्ध्वमेति
मेरोरसौ दक्षिणवामभागे ॥६६॥



दाहिने में पिङ्गला नाड़ी बायें इडा कहाय ।
पिङ्गला में पोंछ व मुख इडा मे रहाय ॥

नाड्यस्त्यवामे ननु पिङ्गलाख्या
वामे च नाडी कथिता त्विडाख्या ।
तत्पुच्छमस्त्यत्र च पिङ्गलाया-
मिडाख्यनाड्यां मुखमस्ति तस्याः ॥६७॥



पिङ्गला में रजोगुणात्मक सूर्य की गति होय ।
पोंछ के अंश में विष रहत है भेद न पावे कोय ॥

अस्यात्र सूर्यस्य रजोगुणस्य
नाड्यां गतिः स्यात्खलु पिङ्गलायाम् ।
तत्पुच्छभागे विषमस्ति नूनं
जीवो विजानाति न कोऽपि तत्त्वम् ॥६८॥

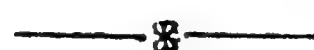
इडा नाड़ी में तमोगुणात्मक चन्द्र आवे जाय।
मुख के अंश में अमृत माया राखत है छिपाय।

नाड्यामिडायां स तमोगुणात्मा
चन्द्रः समायाति च याति नित्यम्।
अंशे मुखस्याऽमृतमस्ति तस्याः
साऽव्यक्तमेतद्विदधाति माया ॥६९॥



चित् शक्ती ही चैतन्य व चेतन शक्ती होय।
चन्द्र सूर्य नाम उन्हीं का दूजा नहीं है कोय॥

मायाभिधा सैव चिदात्मशक्ति-
श्चिद्ब्रह्म वा चेतनशक्तिरस्ति।
चन्द्राभिधा सूर्यपदाभिधाना
न काचिदन्या भवतीह शक्तिः ॥७०॥



आपुहि पैदा करत है नागिन आपुहि ताको खाय।
पोंछ के अंश में जीव रहत है निकसे पैठे धाय॥

स्वयं समुत्पाद्य मुखाङ्गुजङ्गीं
भूयोऽपि तां भक्षयति स्वयं सा।

तत्पुच्छभागे वसतीह जीवो
निःसृत्य वेगेन पुनर्विशेत्सः ॥७१॥



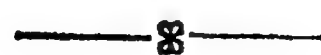
चित् शक्ती ही मन रूपा इच्छा शक्ती होय।
रजोगुण में जीव के संग सदा रहत है सोय॥

चिच्छक्तिरेषाऽस्ति मनःस्वरूपा
सेच्छात्मिका शक्तिरतीव चित्रा।
सहैव जीवेन रजोगुणेऽस्मिन्
निरन्तरं या वसति प्रसुप्ता ॥७२॥



वार वार अचेतन होय आवे जावे जीव।
अन्धकार में राह भुलाय के कवहूं न पावे पीव॥

अचेतनीभूय[1] पुनः पुनश्च
जीवः समायाति च याति नित्यम्।
विस्मृत्य मार्गं स महान्धकारे
कदापि नाप्नोति पतिं स्वकीयम् ॥७३॥



१ (अचेतनः सम्प्रतिवारमेवम्) इति पाठः।

बड़ी विचित्र संसार गती भेद न पावे कोय ।
गुरु प्रताप से भेद लखै जो निकल भागे सोय ॥

अतीव संसारगति र्विचित्रा
प्राप्नोति तत्त्वं नहि कोऽपि जीवः ।
विन्देत तद्यश्च गुरोः प्रतापा-
च्छीघ्रं विनिःसृत्य पलायते सः ॥७४॥

❀

विषय विष को भोग कर जीव सदा अचेतन ।
बिनु दीक्षा चेतन नहीं होवे कितनहू करै यतन ॥

विषस्वरूपान्विषयान् प्रभुज्य
जीवो भवेच्चेतनताविहीनः ।
दीक्षां विना तस्य न चेतनत्वं ।
कुर्यात्स यत्नान्कियतोऽपि नित्यम् ॥७५॥

❀

पूजा पाठ दर्शन पर्शन कोउ न आवे काम ।
विना दीक्षा राह न पावे कबहूँ न पहुँचे धाम ॥

पाठेक्षणस्पर्शनपूजनानि
व्रजन्ति नो सार्थकतामिमानि ।

(जगद्गति वैं महती बिचित्रा इति पाठः)

दीक्षां विना नैव लभेत मार्गं
विशेन्न तद्धाम कदापि जीवः ॥७६॥



विना दीक्षा ज्ञान शक्ती का होय नहीं संचार।
सूती रहे ज्ञान शक्ती का संग होय जीव पार॥

दीक्षां विनाऽस्या ननु बोधशक्तेः
संचार एवाऽत्र सुदुर्लभः स्यात्।
ज्ञानात्मिका शक्तिरियं प्रसुप्ता
कया समं पारमियात्स जीवः ॥७७॥



दीक्षा पावे ऊपर धावे निकल जाय वहि पार।
गुरु प्रताप से माया भागे आनन्द मिले अपार॥

गच्छेदसावूर्ध्वमवाप्य दीक्षां
निःसृत्य पारं वहिरेव यायात्।
अपैति माया हि गुरोः प्रतापा-
दपारमानन्दमुपैति जीवः ॥७८॥



गुरुप्रतापादपयाति माया।
(जीवः सदाऽऽनन्दमुपैत्यपारम्) इति पाठः।

तीन प्रकार की दीक्षा जीव को गुरू जो देवे दान ।
अचेतन जीव चेतन होकर पावे परित्रान ॥

जीवस्य दीक्षा त्रिविधाऽस्ति लोके
स सद्गुरुश्चेद्विदधीत दानम् ।
अचेतनः सोऽपि सचेतनः सन्-
जीवः परित्राणमुपैति नूनम् ॥७९॥

प्रथम दीक्षा चक्षुदीक्षा दूसरी दीक्षा मन्त्र ।
तीसरी दीक्षा स्पर्शदीक्षा तोड़े माया यन्त्र ॥

चक्षुःसमाख्या प्रथमा हि दीक्षा
द्वितीयदीक्षाऽस्ति च मन्त्रसंज्ञा ।
स्यात्स्पर्शदीक्षा यदि दैवयोगान्-
मायात्मकं यन्त्रमिदं भिनत्ति ॥८०॥

प्रथम में विचार वितर्क दूसरे में तीसरे में समाधी होय।
साधन में यह तीन पाद हैं जानै योगी कोय ॥

१ स्यात्स्पर्शदीक्षा यदि वा तृतीया ।
सा स्पर्शदीक्षा यदि दैवतः स्यात् । इति पाठः ।

आद्ये विचारोऽस्ति ततो वितर्कः
पादे तृतीये च भवेत्समाधिः ।
पादास्त्रयः साधनतादशायां
जानाति कश्चिद्विरलोऽत्र योगी ॥८१॥

—❀—

प्रथम उपासना दूसरा कर्म तीसरा ज्ञान होय ।
तीन काण्ड में तीन दीक्षा जाने विरलै कोय ॥

उपासना स्यात्प्रथमे द्वितीये
कर्मैव बोधश्च भवेत्तृतीये ।
काण्डत्रये तास्त्रिविधा हि दीक्षा
जानाति कश्चिद्विरलो मनुष्यः ॥८२॥

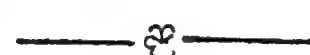
—❀—

कर्मकाण्ड में दुई दीक्षा हंस को दुई गति होय ।
ज्ञान काण्ड में एक ही दीक्षा सोहं जानो सोय ॥

दीक्षाद्वयी स्यात्किल कर्मकाण्डे
ह्यसंस्कृता हंसगतिश्च शुद्धा ।
या ज्ञानकाण्डेऽस्ति सदेकदीक्षा
जानीहि सोऽहंगतिरूपिणीं ताम् ॥८३॥

प्रथम दीक्षा पाय करके नाभी चक्र को फोड़े।
दूसरी दीक्षा पाय कर तब उतरे और चढ़े॥

आद्यां स दीक्षां समवाप्य जीवो
भिन्द्यादवश्यं मणिपूरचक्रम्।
पुन-र्द्वितीयां समवाप्य दीक्षा-
मायात्यधो वा पुनरूर्ध्वमेति॥८४॥



तीसरी दीक्षा पायकर जीव निज घर पहुंचे जाय।
ब्रह्मानन्द में मगन होय कर स्वरूपमें ठहराय॥

एवं ततोऽवाप्य तृतीयदीक्षां
जीवो निजं धाम विशत्यवश्यम्।
आनन्दमग्नो दिवि तत्स्वरूपा-
वस्थानभूतो भवतीति सत्यम्॥८५॥



तीन गुण के बाहर निकल कर निजघर पहुँचे सोय।
पर ब्रह्म का बोध करे वह माया अन्त में रोय॥

वहिर्विनिःसृत्य गुणत्रयात्त-
न्निकेतनं स्वं समवाप्नुयात्सः।

कुर्यात्परब्रह्मण एष बोधं
यदा तदा रोदिति सैव माया ॥८६॥



विचित्र माया की फांसी छूटै नाहीं कोय ।
सत्गुरु छुड़ावे दीक्षा देके दूजा न छुड़ावे कोय ॥

मायात्मकं बन्धनमस्ति चित्रं
जीवं न कश्चिद्विजहाति नूनम् ।
संमोचयेत्सद्गुरुरेवं दीक्षां
प्रदाय वान्यः परिमोचयेत्कः ॥८७॥



तीन गुण का बन्धन छुड़ावे पहुँचावे निजधाम ।
स्वस्वरूप का बोध कराय के राखै अपने ठाम ॥

संमोच्य बन्धं स गुणत्रयस्य
संप्रापयेत्तं निजधाम दिव्यम् ।
आत्मस्वरूपं ननु बोधयित्वा
स्वधाम्नि संस्थापयतीह जीवम् ॥८८॥



१ अत्रेति पाठः ।

ब्रह्मा विष्णू शिव के परे सत्‌गुरू का है स्थान ।
चित्स्वरूप पर ब्रह्म उनही को तू जान ॥

विष्णोः शिवाद्ब्रह्मण एव सिद्धं
स्थानं परस्ताद्दिवि सद्गुरोस्तत् ।
चिदात्मकं ब्रह्म परं यदस्ति
त्वं शिष्य तत् सद्गुरुमेव विद्धि ॥८९॥

—— ॐ ——

प्राण रूपी ईश्वर के स्वरूप से हम गुरू ।
चित्त रूपी ब्रह्मके स्वरूप से परम गुरू ॥

प्राणस्वरूपेश्वरनामतोऽह-
माद्यो गुरुः शास्त्रनिरूपितोऽस्मि ।
चित्तात्मकाद्ब्रह्मण एव रूपा-
दहं द्वितीयः परमो गुरुः सः ॥९०॥

—— ॐ ——

चित् शक्ती के स्वरूप से हम है परात्पर गुरू ।
सच्चिदानन्द परब्रह्मके स्वरूप से हम ही परमेष्ठी गुरू ॥

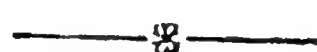
चिच्छक्तिरूपादहमेव भूयो
गुरुस्तृतीयश्च परात्परोऽस्मि ।

रजोगुणात्मानमिमं स जीव-
मादाय संग्राहयतीह सूत्रम् ॥१६॥



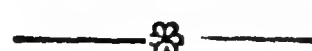
हंस की डोरी ऊपर खींच कर मायाचक्र तक लावे।
माया चक्र भेद के जीव को ब्रह्मलोक पहुंचावे॥

आकृष्य हंसात्मकसूत्रमेतन्-
मायाख्यचक्रावधि तं नयेत्सः।
तच्चक्रमप्येव पुनर्विभिद्य
तं ब्रह्मलोकं निनयेत्स्वजीवम् ॥१७॥



तीसरी दीक्षा देकर जीव को सत्त्वगुण पकड़ावे।
कृष्णा गती पलट कर शुक्ला गती करावे।

प्रदाय जीवाय तृतीयदीक्षां
संग्राहयेत्सत्त्वगुणं गुरुस्ताम्।
गतिं स कृष्णां परिवर्त्य तस्य
शुक्लां गतिं कारयतीह दिव्याम् ॥१८॥



सोहं की गति समाप्त कराय के परम पद पहुंचावे।
जनम मरनका भरम छुड़ावे फिर नहीं भवजल आवे॥

सोहंगतिं तस्य गुरुः समाप्य
संप्रापयेत्तं परमं पदं तत् ।
संमोचयेदेव च जन्ममृत्यो-
र्भ्रमं भवाब्धौ न पतेत्स भूयः ॥९९॥



श्यामा ही तो गुरू उनका चरण है ओंकार ।
प्राण मन से चरण धरिके उतरों भवजलपार ॥

श्यामा गुरु र्भवति तस्य गुरुर्गुरूणा-
मोङ्कार एव चरणो दिवि वर्तमानः ।
प्राणैश्च शुद्धमनसा चरणं गृहीत्वा
पारं व्रजेन्मुनिजनो भवसागरस्य ॥१००॥



श्रीराममूर्तिकविनैवमनूदितोऽयं
पौराणिकेन सुरवागनवद्यपद्यैः ।

तस्य चरण इत्यन्वयः ।

पूज्यपादैरत्र पद्ये मङ्गलार्थं श्यामाचरण इति स्वगुरो र्नामोल्लेखनं कृतम् । गुप्तरीत्या योगिनां मोक्षदायिनी सोहंगतिर्दर्शितेत्यवधेयम् ।

श्रीपूज्यपादगुरुवर्य्यकृपाकटाक्षा-
द्भागः समाप्तिमगमत्प्रथमः सुवाण्याः ॥१॥

-❀-

❀ समाप्तोऽयं प्रथमो भागः ❀

॥ शुभमस्तु ॥



* श्रीः *

सद्गुरुवाणी

अथ द्वितीयभाग

हंस के परे सोहं होवे सोहं के परे ओंकार।
ओंकार के परे चित्प्रकाश सन्तो करो विचार॥

हंसात्परं सोऽहमिदं पदं स्यात्
सोऽहं पदात्स्यात्प्रणवः परश्च।
स चित्प्रकाशः प्रणवात्परोऽपि
कुर्वन्तु सन्तः सततं विचारम्॥ १॥

स्थूल के परे सूक्ष्म होवे सूक्ष्म के परे कारण होय।
कारण के परे महाकारण और न दूजा कोय॥

स्थूलाच्च सूक्ष्मं परमस्ति दिव्यं
सूक्ष्मात्परं कारणमेव शस्तम्।
ततः परं कारणतो हि तत्स्याद्
व्यक्तं महाकारणमत्र नान्यत्॥ २॥

सगुण के परे निर्गुण होवे निर्गुण के परे अतीत ।
अतीत ही तो अलक्ष्य है वही तो है चित् ॥

तन्निर्गुणं यत्सगुणात्परं स्यात्
परं भवेन्निर्गुणतो ह्यतीतम् ।
अतीतमत्रैव सदाऽस्त्यलक्ष्यं
चिदास्पदं तद्भवतीति सत्यम् ॥ ३ ॥

कर्म के परे अकर्म होवे अकर्म के परे विकर्म होय ।
विकर्म ही तो निष्कर्म है आवे जाय नहीं कोय ॥

अकर्मसत्ता दिवि कर्मणोऽन्ते
विकर्मसत्ता तदकर्मणोऽन्ते ।
नैष्कर्म्यमस्त्यत्र विकर्मरूपं
कदापि नायाति न याति कश्चित् ॥ ४ ॥

कर्म योग से ज्ञान होवे ज्ञान योग से भक्ती ।
भक्तियोग से मोक्ष होवे वही जीवन मुक्ती ॥

बोधोऽस्ति हंसात्मककर्मयोगात्
तज्ज्ञानयोगाद्विदिताऽस्ति भक्तिः ।

तद्भक्तियोगाद्भवमुक्तिरुक्ता
सैवोत्तमा जीवनमुक्तिरुक्ता ॥ ५ ॥



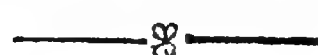
शब्द समावे नाद में बिन्दु में नाद समाय।
बिन्दु समावे निःशब्द में न आवे न जाय॥

विलीयते नादपदे स शब्दो
विलीयते बिन्दुपदे स नादः।
निःशब्दके बिन्दुरयं विलीनो
नायाति यातीति च निर्विवादम् ॥६॥



पत्र समावे वृक्ष में बीज में वृक्ष समाय।
बीज समावे मूल में शून्य रहा सब छाय॥

इमानि पत्राणि विशन्ति वृक्षे
वृक्षोऽस्ति बीजे नितरां विलीनः।
विलीयते बीजमिदं च मूले
सर्वत्र शून्यं विततं विभाति ॥ ७ ॥



कोई न आवे कोई न जावे कोई नहीं समाय।
संकल्प से सब कुछ होवे निर्विकल्प से जाय॥

नायाति कश्चिन् नहि याति कश्चिद्
विलीयते क्वापि न कश्चिदत्र ।
सर्वं हि सङ्कल्पविकासमात्रं
सङ्कल्पहानादिह नष्टमात्रम् ॥८॥

सच्चिदानन्द पर ब्रह्म और न दूजा कोय ।
एक अनन्त ब्रह्म माया शून्य ही शून्य सब होय ॥

सच्चित्सुखं ब्रह्म परं तदस्ति
द्वैतं न किञ्चित्परमार्थतोऽस्ति ।
तद्ब्रह्म मायैकमनन्तरूपा
शून्यं हि शून्यं हि समस्तमस्तु ॥९॥

—❀—

अनन्त जाने एक जाने फिर न जाने कोय ।
अज्ञान ज्ञान विज्ञान कहावे भिन्न अवस्था होय ॥

हंसे ह्यनन्तं परतस्तदेकं
स्थितो न जानाति कदापि योगी ।
विज्ञानमज्ञानमथापि बोधो
भिन्ना इमा योगविदामवस्थाः ॥१०॥

अविद्या संग सपना देखे विद्या संग में जागे।
परा विद्या संग होय तब माया छोड़ के भागे॥

समीक्षते स्वप्नमविद्ययाऽसौ
जागर्ति विद्याकृतसङ्गतश्च।
परात्मविद्यां समवाप्य योगी
मायां परित्यज्य विशेत्स्वगेहम्॥११॥



सपने में तो अनन्त देखे जागने में तो एक।
तुरीय पद में जाय पहुँचे आपही आपको देख॥

स्वप्ने समीक्षेत गतस्त्वनन्तं
निरन्तरं जागरणे तथैकम्।
योगी प्रविष्टः स्वपदं तुरीयम्
आत्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत्॥१२॥



कपड़ा पहिर के अनन्त देखे लंगोटी पहिर के एक।
नंगा होय तो कुछ न देखे आपही आपको देख॥

एकं न वाह्यं परिधाय वस्त्रं
समावृतोऽन्तर्वसनेन चैकम्।

द्वाभ्यां विहीनो यदि नम्न एष

तदात्मरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥१३॥



बाहर जाय तो अनन्त देखे भीतर आवे तो एक।
महाकाश में कुछ न देखे आपही आप को देख॥

वहिर्गतेर्हेतुवशादनन्त-

मन्तर्गतेः कारणतस्तथैकम्।

योगी महाकाशमुपेत्य नित्यम्

आत्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥१४॥



रात्री को अनन्त देखे भोर को देखे एक।
दिन भये पर कुछ न देखे आपही आपको देख॥

अनन्तमीक्षेत सदा निशाया-

महर्मुखं प्राप्य तदेकमेव।

सूर्योदये किञ्चन नैव पश्ये-

दात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥१५॥



कृष्ण वर्ण में अनन्त देखे रक्त वर्ण में एक।
शुक्ल वर्ण में कुछ न देखे आपही आपको देख॥

वर्णेऽसितेऽनन्तपदार्थबोधं
कुर्यात्स रक्तात्मक एकबोधम् ।
शुक्लात्मकं वर्णमवाप्य दिव्य-
मात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥१६॥



दौड़ते दौड़ते अनन्त देखे टहलते टहलते एक ।
बैठे बैठे कुछ न देखे आपही आपको देख ॥

अनन्तमेकं क्रमतः स योगी
शीघ्रं स्वगत्याऽऽत्मसुधीरगत्या ।
लब्ध्वा स्थितिं ब्रह्ममयीमपूर्वा-
मात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥१७॥



स्थूल मार्ग में अनन्त देखे सूक्ष्म मार्ग में एक ।
घर में घुसे तो कुछ न देखे आपही आपको देख ॥

स्थूलायने ज्ञानमनेकरूपं
कुर्यात्स सूक्ष्मायन एकरूपम् ।
प्रविश्य योगी निजगेहमध्य-
मात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥१८॥



शब्द में रहे तो अनन्त देखे नाद में रहे तो एक।
बिन्दु में रहे तो कुछ न देखे आपही आपको देख ॥

शब्दस्थितः पश्यति योग्यनन्तं
नादस्थितः सन्न च वेत्त्यनन्तम्।
बिन्दुस्थितः किञ्चन नैव पश्ये-
दात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥१९॥

——❀——

पत्रों में तो अनन्त देखे वृक्ष में देखे एक।
बीज में घुसे तो कुछ न देखे आपही आपको देख ॥

स्थितोऽधिपत्रं यतिरेकभिन्नं
स्थितोऽधिवृक्षं यदनन्तभिन्नम्।
स्थितोऽधिबीजं स तदप्यभिन्न-
मात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥२०॥

——❀——

स्थूल शरीर में अनन्त देखे सूक्ष्म में देखे एक।
कारण शरीर मे कुछ न देखे आपही आपको देख ॥

संलक्षयेदेवमनन्तमेकं
स्थूले च सूक्ष्मे क्रमतः शरीरे।

योगी यदा कारणदेहवान्स्या-
त्तदात्मरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥२१॥



संचार होय तो अनन्त देखे स्पन्दन होय तो एक।
निःस्पन्दन होय तो कुछ न देखे आपही आपको देख॥

संचारतः सर्वमनन्तमेतत्
स स्पन्दनाद्योगविदेकमेव।
निःस्पन्दनात्किञ्चन नैव पश्ये-
दात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥२२॥



नीचे उतरे अनन्त देखे ऊपर चढ़े तो एक।
कोठरी भीतर कुछ न देखे आपही आपको देख॥

पश्येत्सदाऽनन्तमधोऽवतीर्णः
समारुरुक्षुर्यतिरेकमेव।
प्रविश्य योगी पदमद्वितीय-
मात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥२३॥



माया में रहे तो अनन्त देखे ब्रह्म में देखे एक।
पर ब्रह्म में स्थिति होय तो आपही आपको देख॥

मायास्थितोऽनेकविधं प्रबोधं
कुर्यात्स ब्रह्मस्थित एकबोधम् ।
स्थितः परे ब्रह्मणि दैवयोगा-
दात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥२४॥



रूप नाम में अनन्त देखे आत्मा में देखे एक ।
परमात्मा में जाय के अटके आपही आपको देख ॥
योगी जनोऽयं क्रमतस्तदेक-
मनन्तमत्रात्मनि नामरूपे[1] ।
अवाप्य दिव्यं परमात्मतत्त्व-
मात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥२५॥



हंसा के संग अनन्त देखे सोहं के संग एक ।
ओंकार के संग कुछ न देखे आपही आपको देख ॥
एकं तथाऽनन्तपदं यथावत्
सोहंपदे हंसपदे च सङ्गात् ।
अवाप्य योगी प्रणवस्य सङ्ग-
मात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥२६॥



१ अत्र नामरूप इति संबन्धः ।

दहिने पैर में अनन्त देखे बांये पैर में एक।
विना पैर के कुछ न देखे आपही आपको देख ॥

ईक्षेत सोऽनन्तपदार्थमेकं
तद्दक्षिणेऽङ्घ्रौ चरणेऽत्र वामे।
पद्भ्यामुभाभ्यां रहितो यदा स्या-
त्तदात्मरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥२७॥



पांच तत्त्व में अनन्त देखे महत्तत्त्व में एक।
परमतत्त्व में जायके ठहरे आपही आपको देख ॥

तत्त्वेषु पञ्चस्वनुवर्तमानो-
ऽनन्तं महत्तत्त्वपदे तथैकम्।
लब्ध्वा स योगी परमाख्यतत्त्व-
मात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥२८॥



संसार में रहे तो अनन्त देखे बन में जाय तो एक।
महाकाश में घुस जाय तो आपही आपको देख ॥

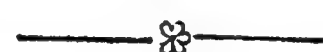
संसारमार्गे निवसन्ननन्तं
विन्देत गत्वा स वनं तदेकम्।

आकाशमाविश्य मंहद्गतः स-
न्नात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥२९॥



तीन लोक में अनन्त देखे काशी क्षेत्र में एक।
मणिकर्णिका में गोता मारे तो आपही आपको देख॥

लोकत्रयान्तर्गत एकभिन्नं
वाराणसीक्षेत्रमितस्तदेकम्।
निमज्ज्य योगी मणिकर्णिकाया-
मात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥३०॥



ब्रह्मचर्य में अनन्त देखे बानप्रस्थ में एक।
सन्यास में कुछ न देखे आपही आपको देख॥

स ब्रह्मचर्ये विविधं च वान-
प्रस्थाश्रमेऽनन्यतया तदेकम्।
सन्यासमाविश्य पदं तुरीय-
मात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥३१॥



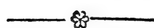
धारणा में अनन्त देखे ध्यान में देखे एक।
समाधी में कुछ न देखे आपही आपको देख॥

१ महत्, आकाशमित्यन्वयः।

अनन्तमीक्षेत स धारणायां
ध्याने तथा योगविदेकतत्त्वम् ।
समाधिमध्ये स्थित एव नित्य-
मात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥३२॥



कर्म योग में अनन्त देखे ज्ञानयोग में एक ।
भक्तियोग में कुछ न देखे आपही आपको देख ॥
भिन्नात्मकं वस्तु स कर्मयोगे
तज्ज्ञानयोगे च सदेकवस्तु ।
अवाप्य योगी चिति भक्तियोग-
मात्मस्वरूपं स्वयमेव पश्येत् ॥३३॥



पांच तत्त्व का पूतला रहते न चीन्हे कोय ।
जलाय के पुतला खाक करे जो पुतला चीन्हे सोय ॥
भूतात्मकं स्थूलमिदं यदाऽस्ति
विदन्ति केचिन्न तदा शरीरम् ।
प्रज्वाल्य ये पिण्डमिदं दहन्ति
जानन्ति ते पिण्डरहस्यमन्तः ॥३४॥



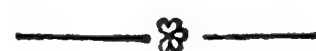
पांच तत्व का पूतला मर्म काहू न जान।
जियत मरे पर आंख खुले जब तब होवे पहिचान ॥

पञ्चात्मकस्यास्य कलेवरस्य
न मर्म केचिन्मनुजा विदन्ति ।
जीवन्मृतः स्वक्षिविकासवान्स्या-
द्यदा तदा वेत्ति रहस्यमन्तः ॥३५॥



पांच तत्त्व का पूतला चीन्हें संत सुजान।
शरीर त्यागे उठके जागे तब पावे भगवान् ॥

पञ्चात्मकं स्थूलशरीरमेतद्
विदन्ति सन्तो भुवि योगिवर्य्याः ।
त्यक्त्वा शरीरं पुनरुत्थितश्चेत्
प्राप्नोति जाग्रद्भगवन्तमन्तः ॥३६॥



सच्चिदानन्द भगवान है यह निश्चय कर मान।
सगुण निर्गुण अतीत वही है और न दूजा जान ॥

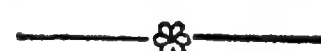
सच्चित्सुखात्मा भगवान्स एव
निश्चित्य मन्यस्व तमत्र देहे ।

स निर्गुणः सन्सगुणोऽस्त्यतोतो
जानीहि नान्यत्किमपि द्वितीयम् ॥३७॥



सगुण तो ईश्वर कहावे निर्गुण ब्रह्म कहाय।
अतीत तो पर ब्रह्म कहावे सब घट रहा समाय ॥

स ईश्वरोऽस्मिन्सगुणेन चोक्तः
स निर्गुणो ब्रह्मपदेन चोक्तः।
उक्तं परब्रह्म पदं त्वतीतं
घटे घटे व्याप्तमचिन्त्यतत्त्वम् ॥३८॥



शब्दात्मक नादात्मक शब्दातीत होय।
ओं तत् सत् स्वरूप उनका विरलै जाने कोय ॥

शब्दात्मनादात्मकमस्ति तत्त्वम्
शब्दादतीतं च तदेव तत्त्वम्।
ओमादि तत्सद्भिरलं स्वरूपं
विदन्ति केचिद्विरला मनुष्याः ॥३९॥



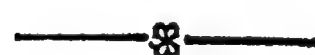
संकल्प में तीन होवे निर्विकल्प में एक।
एक छोड़ दूजा नहीं जो चाहे सो देख ॥

सङ्कल्पतोऽस्तित्वमिदं त्रयाणां
स्यान्निर्विकल्पाच्च सदैकसत्ता ।
एकं विना नान्यपदार्थसत्ता
यस्याभिलाषः प्रविलोकयेत्तत् ॥४०॥



वही एक तो तुम आये हो और नहीं है कोय ।
हम तुम में कुछ भेद नहीं है शब्दमात्र है दोय ॥

त्वमागतोऽस्येव तदेकतत्त्वं
द्वैतप्रतीतिर्भवतीह मिथ्या ।
त्वन्मत्स्वरूपेऽस्ति न कोऽपि भेदः
स्याच्छब्दमात्रात्तव भेदभासः ॥४१॥



शब्द स्वरूपा चित् शक्ती चित् निःशब्द होय ।
वही शब्द ओंकार है विरलै जाने कोय ॥
शब्दात्मिका शक्तिरियं चिदाख्या
चिदेव[1] निःशब्दपदाभिधानम् ।

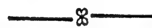
१ चित्पदेन सहस्रारचक्रस्थं परब्रह्म गृह्यते न तु ब्रह्म ।

स[1] शब्द ओंकारपदाभिधानं
जानन्ति केचिद्विरला मनुष्याः ॥४२॥



ओंकार से विश्व रचा है जाने संत सुजान ।
जड़ चेतन और माया ब्रह्म एक ओंकार जान ॥

ओङ्कारशब्दाज्जगदुद्भवः स्याद्
विदन्ति सन्तो भुवि योगिनस्तम् ।
* चित्तात्मकं ब्रह्म जडा च माया
जानीहि सर्वं प्रणवात्मकं तत् ॥४३॥



अनाहत शब्द ओंकार का सब घट में विस्तार ।
वही तो है रामनाम और उसी में कर्तार ॥

अनाहताख्यः[2] प्रणवोऽस्ति शब्दो
घटे घटे व्यापकता हि तस्य ।
तदेव शस्तं शुभरामनाम
कर्तृत्वमत्रैव निविष्टमस्ति ॥४४॥

१ यत्र शब्दात्मिका शक्तिः स शब्दः । २ अनाहतो य इति पाठः ।
* चित्तपदेनाऽऽज्ञाचक्रस्थं शब्दब्रह्म गृह्यते
नतु सहस्रारचक्रस्थं शब्दातीतं परब्रह्म ।

एक शब्द के दुई भाग में स्थूल सूक्ष्म दुई मान ।
स्थूल भाग में पत्र बने हैं वृक्ष सूक्ष्म में जान ॥

सङ्कल्पितं प्राक्कथितैकशब्दे
स्थूलं तथा सूक्ष्ममिदं क्रमेण ।
स्थूले कृतान्यस्य दलानि भागे
जानीहि वृक्षं किल सूक्ष्मभागे॥४५॥



जड़माया है स्थूल भाग में ब्रह्म सूक्ष्म में जान ।
नीचे पत्र और ऊपर वृक्ष है मूल निःशब्द पहिचान।

मायात्मिका शक्तिरियं जडाख्या
स्थूले कृता ब्रह्म च सूक्ष्मभागे ।
पत्राण्यधस्तादुपरिस्थवृक्षो
मूलं च निःशब्दपदाभिधानम् ॥४६॥



कल्पवृक्ष वह ओंकार है जाने सन्त सुजान।
वृक्ष चढ़े तो निश्चय पावे शब्द ब्रह्म भगवान ॥

स कल्पवृक्षः प्रणवस्वरूपो
विदन्ति केचिद्भुवि योगिनस्तम् ।

आरुह्य वृक्षोपरि निश्चयेन
शब्दात्मकं ब्रह्म लभेत योगी ॥४७॥

—*—

एक वस्तू दुई दिखावे जो बिच दर्पण होय।
दर्पण हटा तो दुई मिटा एक छोड़ न कोय॥
एकत्र वस्तुन्यपि भेदबोधो
मध्ये स्थिताद्दर्पणतो निविष्टः।
भिन्नं यदादर्शपदं तदैव
द्वैतं न सत्, तत्र सदेकतत्त्वम् ॥४८॥

—❀—

चित्त दर्पण पर्दा ढका स्वरूप नहीं दर्शाय।
पर्दा हटा संशय मिटा अन्धकार मिट जाय॥
चित्तात्मको दर्पण आवृतः स्या-
दतो न लक्ष्यं सुखमात्मरूपम्।
न संशयोऽस्त्यावरणं विनश्ये-
द्यदा तदाऽन्तं तिमिरं प्रयाति ॥४९॥

-❀-

बिन गुरू पर्दा नहीं हटे संशय नहीं मिटाय।
अन्ध कूप संसार में जीव आवे जाय॥

गुरुं विना नावरणं विनश्ये-
न्न संशयो वापि विनाशमृच्छेत् ।
अनादिकालाज्जगदन्धकूपे
मृत्युं च जन्माऽत्र लभेत जीवः ॥५०॥

—❀—

अंधा होकर बाहर निकसे स्वरूप जात बिसराय ।
चाम का जामा पहिर के मूरख दौड़त फिरै लुभाय ॥
अन्धो यदाऽऽयाति बहिर्मनुष्यो
रूपं तदा विस्मरति स्वकीयम् ।
संवेष्ट्य चर्मावरणं स मूर्खः
पुनः पुनर्धावति लोभयुक्तः ॥५१॥

—❀—

नाम रूप को सब कोई चीन्हे आत्मा न चीन्हे कोय ।
एक ही आत्मा सब घट व्यापी चीन्हे सो पण्डित होय।
विदन्ति सर्वे भुवि नामरूप-
मात्मा न केनाऽपि निरीक्ष्यते सः ।
आत्मानमेकं विततं जना ये
पश्यन्ति ते पण्डितनामभाजः ॥५२॥

—❀—

हाड़ मांस का जामा बना है ऊपर मढ़ा है चाम ।
राम न चीन्हें चाम चीन्हें झूठा पण्डित नाम ॥

मांसास्थिभिर्निर्मितमस्ति पिण्डं
समावृतं चर्मभिरूर्ध्वमेतत् ।
चर्माऽत्र जानाति न राममीशं
मिथ्या भवेत्पण्डितनाम तस्य ॥५३॥



काशीक्षेत्र महाश्मशान हैं ब्रह्म अग्नी जलाय ।
पांच पचीस को जलाय देवे रूप नाम मिट जाय ॥

काशीपुरी नाम महाश्मशानं
ब्रह्माग्निमत्र ज्वलयेद्विपश्चित् ।
प्राणांश्च तत्त्वानि दहेत्क्रमेण
निरूपणीयेऽपि न नामरूपे ॥५४॥



नाम रूप को त्याग देवे देखे अपना रूप ।
चित्तदर्पण निर्मल जहां सदा स्वच्छ अनूप ॥

विहाय तत्रैव स नामरूपे
रूपं निरीक्षेत जनः स्वकीयम् ।

१ अस्थिमांसयोरवान्तरभेदमादाय वहुत्वम् ।

चित्तात्मकं दर्पणवस्तु यत्र
स्वच्छं सदा निर्मलमद्वितीयम् ॥५५॥

—❀—

ज्ञान होवे भरम खोवे छूटे सकल संसार।
गुरु प्रताप से माया भागे आनन्द मिले अपार ॥

ज्ञानं लभेत भ्रमहेतुशून्य-
स्तदैव लोकत्रितयाद्बहिः स्यात्।
अपैति मायाऽपि गुरोः प्रतापा-
दपारमानन्दमुपैति जीवः ॥५६॥

—❀—

माया तो है नाम रूप और ब्रह्म आत्मा होय।
पर ब्रह्म परमात्मा विरलै जाने कोय ॥

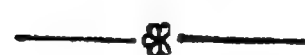
मायास्वरूपं भुवि नामरूपं
ब्रह्मात्मरूपं परमात्मरूपम्।
तत्स्यात्परब्रह्म महानुभावा
विदन्ति केचिद्विरला मनुष्याः ॥५७॥

—❀—

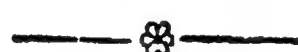
नाम रूप तों अनन्त है और आत्मा तो है एक।
परमात्मा शून्य है उसका रूप रंग नहीं रेख ॥

१ तत्परब्रह्म परमात्मरूपं स्यादित्यन्वयः।

अनन्तरूपं भुवि नामरूप-
मात्मस्वरूपं च तदेकरूपम् ।
शून्यस्वरूपं परमात्मरूपं
रेखा न वर्णोऽस्ति न तस्य रूपम् ॥५८॥



एक ही ब्रह्म सकल घट व्यापै नाम रूप अनन्त ।
आत्माराम तो वही कहावे जाने साधू संत ॥
घटे घटे ब्रह्म ततं तदेकं
यन्नामरूपात्मकमस्त्यनन्तम् ।
इत्यागमज्ञैः कथितस्तदात्मा-
रामस्तमेवाऽत्र विदन्ति सन्तः ॥५९॥



शब्दस्वरूपी राम है और शब्द ही तो नाम ।
राम हंस में नाम सोहं पावे पहुँचे धाम ॥
शब्दस्वरूपो भगवान्स रामो
नामाऽस्ति शब्दात्मकमेव नान्यत् ।
स हंससोहंपदयोश्च रामं
नामाप्य योगी निजधाम याति ॥६०॥

आत्माराम सकल घट व्यापै हरदम आवे जाय।
दम ठहरे ऊपर चढ़े आप ही आप समाय॥

विश्वंप्रविष्टो बहिरन्तरात्मा-
रामः प्रतिश्वासमथैति याति।
ऊर्ध्वंगतः प्राणनिरोधतः सन्
स्वयं स्वरूपं प्रविशेत्स योगी॥६१॥

राम नाम तो शब्द है और वही शब्द ओंकार।
नाम डोरी पावे बिना कोई न उतरे पार॥

शब्दात्मकं स्यादिह रामनाम
स शब्द ओङ्कारपदाभिधानः।
शब्दात्मकं सूत्रमिदं विनैतां
कश्चिन्न मायामतियाति जीवः॥६२॥

गुरुमुख होय तो डोरी पावे और न पावे कोय।
उलटा सीधा रामनाम एक ओंकार में होय॥

---

१ विश्वप्रविष्टः सर्वत्र व्याप्त आत्मारामः प्रतिश्वासं बहिरैति बहिरायाति। अथान्तर्याति। प्राणनिरोधतः प्राणायामादूर्ध्वंगतः सन्निन्यन्वयः। उक्तञ्च योगशास्त्रे-"सःकारेण वहिर्याति हंकारेण विशेत्पुनः। हंस हंसेति मन्त्रं वै जीवो जपति सर्वदा।"

दीक्षा द्वितीया यदि मन्त्रसंज्ञा
स्याच्छब्दसूत्रं लभते स नान्यः ।
श्रीरामनाम्नः खलु शुक्लकृष्णे
गती तदैकप्रणवे भवेताम् ॥६३॥

❀

स्वर्ग मर्त्य पाताल में माया का विस्तार ।
सब के ऊपर काशीक्षेत्र में विश्वनाथ दरवार ॥

मायाप्रसारोऽत्र मनुष्यलोके
रसातलेऽस्ति त्रिदशालयेऽपि ।
सर्वोपरिष्टादविमुक्तकाश्यां
श्रीविश्वनाथस्य सुराज्यमस्ति ॥६४॥

❀

काशीक्षेत्र में शिवजी बसें जपें राम का नाम ।
नाम देवे मुक्ती देवें पहुँचावें निज धाम ॥

श्रीरामनाम प्रजपन्महेशो
विराजते संततमत्र काश्याम् ।
स नाम मुक्तिं प्रदिशेत्क्रमेण
संप्रापयेत्तं निजधाम दिव्यम् ॥६५॥

पंचकोश में माया व्यापे पांच तत्त्व गुण तीन ।
काशीक्षेत्र में शिव विराजें नाम में लवलीन ॥

कोशेषु माया वितता जडाख्या
तत्त्वानि पञ्चाऽत्र गुणास्त्रयश्च ।
क्षेत्रे स काश्यां भगवान्महेशो
विराजते नाम्नि सदैव लीनः ॥६६॥



प्रणवरूपी नाम है और चित्तरूपी शिव ।
महाश्मशान काशी क्षेत्र है नहीं माया नहीं जीव ॥

नामाऽस्ति दिव्यं प्रणवात्मकं त-
च्चित्तात्मकः स्याद्भगवान्महेशः ।
काशीपुरी नाम महाश्मशानं
न तत्र माया न च तत्र जीवः ॥६७॥



माया भीतर जीव रहत है माया बाहर शिव ।
माया छोड़ जो काशी जावे शिव हो जाय वो जीव ॥

मायान्तरावासित एष जीवो
मायास्वरूपात्परतः शिवोऽस्ति ।

मायां परित्यज्य गतः स काशीं
शिवो भवेज्जीव उपाधिमुक्तः ॥६८॥

शिव जीव तो दुई नहीं हैं नाम रूप से दोय।
नाम रूपको त्याग देवे दुइ मिल एकै होय ॥

शिवस्य जीवस्य च भेदबोधो
न नामरूपात्पृथगस्ति लोके।
भवेद्विनष्टं यदि नामरूपं
तदैकता स्यादुभयोरवश्यम् ॥६९॥

गुरूवाक्य को जान लेवे और साधे अपना काम।
चतुर्वर्ग फल को पावे सब का दाता राम ॥

विज्ञाय जीवो गुरुवाक्यमन्तः
स्वकर्म संसाधयितुं प्रवृत्तः
स तच्चतुर्वर्गफलं लभेत
सर्वस्य दाता भगवान्हि रामः ॥७०॥

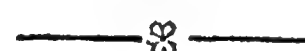
रामनाम की डोरी पावे और जपे अजपा जाप।
तीन गुणन से न्यारा होकर रहजाय आपै आप ॥

श्रीरामनाम्नः समवाप्य सूत्रं
कुर्वीत विद्वानजपाजपं यः
स एव भूत्वा गुणपाशमुक्तः
प्रकाशवान्स्यात्स्वयमात्मभूतः ॥७१॥



बिना जपे से जप होय जो अजपा कहावे सोय।
सोहं के संग राम नाम है पावे विरलै कोय॥

विना जपेनैव जपोऽस्ति यस्याः
सा योगिवर्य्यैरजपा निरुक्ता।
सोऽहंपदान्तर्गतरामनाम
प्राप्नोति कश्चिद्विरलो मनुष्यः ॥७२॥



राम नाम की लूट पड़ी है मर्म न जाने कोय।
बिन गुरु कोउ भेद न पावे कितनहु पण्डित होय॥

श्रीरामनाम्नः प्रणवे गतेस्त-
न्न मर्म केचिन्मनुजा विदन्ति।

१ (अजपा) गायत्री।
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी। इति पुराणोक्तेः।

गुरुं विना वेत्ति न कोऽपि तत्त्वं
भवेत्स चेत्पण्डितराजराजः ॥७३॥

——❀——

ज्ञान अग्नि से कर्मसूत्र को जो कोइ जारा होय।
जड़बोध से रहित होवे पण्डित कहावे सोय॥

ज्ञानाग्निमध्ये निजकर्मसूत्रं
यः कोऽपि सन्दग्धुमदः समर्थः।
तथा च यः स्याज्जडबोधशून्यो
गदन्ति तं पण्डितमत्र सन्तः ॥७४॥

——❀——

पोथी पढ़ पढ़ पण्डित होवे मुख मे कहत हैं राम।
दुर्लभ मानुष जनम खोवे सिद्ध होय नहीं काम॥

अधीत्य योऽधीत्य च पुस्तकानि
रामं मुखाद्वक्ति स पण्डितः सन्।
व्यर्थीकरोत्येव मनुष्यजन्म
न कर्मणः सिद्धिमुपैति नूनम् ॥७५॥

——❀——

गु शब्द से अन्धकार और तेज रू से होय।
अन्धकार को नाश करे जो गुरू कहावे सोय॥

गुकारतोऽन्तः कथितोऽन्धकारो
रुकारतस्तेज उदीरितं तत् ।
सदाऽन्धकारस्य विनाशको यो
गुरुः स एवास्ति न कश्चनान्यः ॥७६॥

काशी क्षेत्र में शिव विराजें सतगुरु उनका नाम ।
प्रकाश करके जीव तारे लखावे आत्माराम ॥
क्षेत्रे स काश्यां भगवान्महेशो
विराजते सद्गुरुनामधेयः ।
विमोच्य जीवान्निजतेजसाऽऽत्मा-
रामं तमालोकयितुं प्रवृत्तः ॥७७॥

गुरूवाक्य तो हंस मंत्र है सहज काम निज काम ।
स्वासा के सङ्ग मंत्र जपे जो पहुँच जाय निजधाम ॥
हंसस्वरूपं गुरुवाक्यमस्ति
कर्म स्वकीयं सहजं हि कर्म ।
श्वासेन सार्धं प्रजपन्स मन्त्रं
विशेदवश्यं निजधाम योगी ॥७८॥

जहां काम तहां राम नहीं है जहां नाम तहां राम।
रामनाम दुई एक करे जो उसका काम तमाम ॥

कर्माऽस्तिता यत्र न तत्र रामो
नामाऽस्तिता यत्र स तत्र रामः ।
यो रामनाम्नोर्विदधीत चैक्यं
तस्यैव कर्माऽत्र समस्तमस्तु ॥७९॥



तन मन प्राण गुरू को अर्पे देय शीश को दान ।
नाम सुनाय के गुरू जियावे छूट जात जब प्रान ॥

प्राणं तथा देहमनःशिरांसि
समर्पयेद्यो गुरवे यथावत् ।
संजीवयेत्तत्र गुरुः स नाम्ना
जीवो यदा प्राणगतेर्विहीनः ॥८०॥



प्रणवरूपी रामनाम है मुर्दा जिलावे सोय ।
अनाहत शब्द ओंकार है पावे जो योगी होय ॥

तद्रामनाम प्रणवात्मकं यत्
संजीवयेज्जीवमिमं गतासुम् ।

अनाहताख्यः प्रणवोऽस्ति शब्दो
योगी तमाप्नोति न कश्चनान्यः ॥८१॥

घट ही में तो राम है और घट ही में तो नाम ।
सतगुरु कृपा जो कोई पावे सिद्ध होय सब काम ॥

कलेवरेऽस्मिन्घटकुड्यतुल्ये
रामस्य नाम्नः कथितो निवासः ।
यः सद्गुरोः कोऽपि दयां लभेत
सिद्धं भवेत्तस्य समस्तकार्यम् ॥८२॥

सत गुरु सम दाता नहीं सतगुरु खुद भगवान ।
सत गुरु छोड़ भगवान खोजे वो है बड़ा नादान ॥

दाता न कश्चिद्गुरुणा समोऽस्ति
स सद्गुरुः स्याद्भगवान्स्वयं हि ।
योऽन्विष्यति श्रीभगवन्तमत्र
त्यक्त्वा गुरुं सोऽस्ति विहीनबोधः ॥८३॥

गुरु गोविन्द तो दुई नहीं है गुरु गोविन्द तो एक ।
सगुण निर्गुण हरि हर एक जो चाहे सो देख ॥

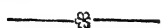
द्वैतं न गोविन्दपदे गुरौ स्याद्
गोविन्ददेवस्य गुरोः सदैक्यम् ।
स निर्गुणः स्यात्सगुणस्तथैको
हरो हरिस्तं क्रमतो नु पश्येत् ॥८४॥



एक आत्मा घट घट व्यापो गुरू कहावे सोय ।
शब्द ब्रह्म ही गुरू है वो और न दूजा कोय ॥
घटे घटे विस्तृत एक आत्मा
गुरोः पदेनैव निरूपितोऽस्ति ।
शब्दात्मकं ब्रह्म गुरुस्तदस्ति
न चात्र कश्चिद्भवति द्वितीयः ॥८५॥

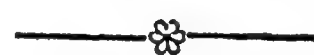


शब्द ब्रह्म ही गुरू है और शब्द ही में राम ।
भव सागर में शब्द ही बेड़ा शब्द में ही तो नाम ॥
शब्दात्मकं ब्रह्म गुरुस्तदस्ति
शब्दे च रामः परिनिष्ठितोऽस्ति ।
शब्दात्मिका नौर्भवसागरेऽस्मिन्
शब्देऽत्र नामाङ्कितमस्ति वस्तु ॥८६॥



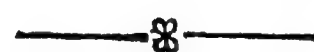
शब्द ही में संसार रचा है शब्द ही में काशी।
शब्दातीत हो जाय तो आप ही है अविनाशी॥

संसारसृष्टिर्भवतीह शब्दे
शब्दे च काशी परिनिष्ठिताऽस्ति।
शब्दादतीतो यदि जीव एष
स्वयं तदा स्याद्विनाशरूपः॥८७॥



परमात्मा परब्रह्म शब्दातीत का नाम।
वही तो है सच्चिदानन्द और वही तो है राम॥

शब्दादतीतं[1] परमात्मनो यद्
व्यक्तं परब्रह्मण एव नाम्ना।
सच्चित्सुखात्मा भगवान्स एव
स एव रामो भुवि योगिगम्यः॥८८॥



माया के सङ्ग आत्माराम है सब घट रहा समाय।
योगी राम में रमण करत है नाते राम कहाय॥

१ यच्छब्दादतीतं तत्परमात्मनः परब्रह्मण एव नाम्ना व्यक्तम्।
(इत्यन्वयः।)

मायात्मशक्त्या सह सन्स[1] आत्मा-
रामोऽस्ति सर्वत्र घटे प्रविष्टः।
रामे रमन्ते भुवि योगिनस्तं
रामाख्ययाऽतो निगदन्ति सन्तः ॥८९॥

शिव शक्ती और राम सीता भिन्न भिन्न मत जान।
चैतन्य व चेतनशक्ती एक आदि भगवान॥
शक्तिः शिवो राम इयं च सीता
जानीहि नैतन्मिथुनं हि भिन्नम्।
चिद्ब्रह्म या चेतनशक्तिरस्ति
तत्सर्वमेकं भगवत्स्वरूपम् ॥९०॥

संकल्प से दुई कहावे वस्तु एक ही जान।
सच्चिदानन्द परमात्मा चित् मात्र को मान॥
सङ्कल्पतो भिन्नमुदीरितं तद्
वस्तुस्वरूपं च सदेकमात्रम्।
सच्चित्सुखं यत्परमात्मतत्त्वं
तदेव चिन्मात्रमवेहि नित्यम् ॥९१॥

---

१ वर्तमान इत्यर्थः।

चित् छोड़ कर भिन्न वस्तु और नहीं है कोय ।
भिन्न मात्र तो रूपनाम है जाने योगी कोय ॥

चित्तत्वभिन्नस्य न कस्यचित्स्या-
दस्तित्वमत्रेक्षितवस्तुनोऽपि ।
यन्नामरूपं भुवि भिन्नमात्रं
तद्वेत्ति कश्चिद्विरलो हि योगी ॥९२॥

चन्द्र सूर्य को एक करै जो योगी कहावे सोय ।
पंचकोश में वास जिसका वह तो भोगी होय ॥

चन्द्रस्य सूर्यस्य करोतु चैक्यं
यः कोऽपि योगी कथितः स एव ।
कोशेषु पञ्चस्वपि यस्य वासः
स एव भोगी गदितो मुनीन्द्रैः॥९३॥

शिव शक्ती जब एक घर आवे तभी कहावे योग ।
विषामृत का संयोग होवे नहीं तो वियोग ॥

एकत्र गेहे शिवशक्तिवासो
यदा भवेत्तं कथयन्ति योगम् ।

संयोग एवैष रवेस्तथेन्दो-
रतोऽन्यथा स्यान्नितरां वियोगः ॥१४॥

———*———

सोहं में हंसा समावे सोहं ही रह जाय।
श्याम श्यामा एक होय तो परमपद को पाय॥

सोहंपदे हंसपदे विलीने
सोहंपदं स्यादवशिष्टमेव।
स्याच्छ्यामयोरेव यदैकताऽसौ
प्राप्नोति दिव्यं परमं पदं तत् ॥१५॥

———❀———

राधाकृष्ण व श्याम श्यामा भिन्न कभी नहीं होय।
दोनो को जो एक जाने योगी कहावे सोय॥

श्यामापदं श्यामपदं च राधा
कृष्णो न भिन्नं मिथुनं कदाचित्।
ऐक्यं द्वयोर्यः परिवेत्ति जीवः
स एव योगी गदितो मुनीन्द्रैः ॥१६॥

———❀———

१विषमार्गो रवेर्भागः सोमभागोऽमृतं स्मृतम्। इति याज्ञवल्क्यः।

शब्द ब्रह्म ओंकार को घट घट में पहिचान ।
वही तो है भगवती और वही भगवान ॥

शब्दात्मकब्रह्मण ओंपदस्य
घटे घटे व्यापकतामवेहि
ब्रह्मैव शक्ति र्भगवत्यचिन्त्या
ब्रह्मैव नूनं भगवांस्तदस्ति ॥१७॥



श्याम श्यामा दुई नहीं हैं एक ही चित् को मान ।
चैतन्य और चेतनशक्ती सोहं शब्द से जान ॥

श्यामापदं श्यामपदं न भिन्नं
द्वयं सदा विद्धि चिदेकतत्त्वम् ।
चिद्ब्रह्म या चेतनशक्तिरस्ति
जानीहि सोहंपद एव दिव्ये ॥१८॥



'सो' शब्द में चेतन शक्ती 'हं' मे चैतन्य होय ।
'सोहं' शब्द में श्याम श्यामा जाने योगी सोय ॥

'सो' वाचके चेतनशक्तिरस्ति
'हं' वाचके चित्पदमस्ति दिव्यम् ।

श्यामापदं श्यामपदं च सोहं-
पदे विजानाति सदैव योगी ॥९९॥

श्यामा ही तो गुरू उनका चरण है ओंकार ।
प्राण मन से चरण धरके उतरो भवजल पार ॥

श्यामा गुरुर्भवति तस्य गुरुर्गुरूणा-
मोङ्कार एव चरणो दिवि वर्तमानः ।
प्राणैश्च शुद्धमनसा चरणं गृहीत्वा
पारं व्रजेन्मुनिजनो भवसागरस्य ॥१००॥

श्रीराममूर्तिकविनैवमनूदितोऽयं
पौराणिकेन सुखागनवद्यपद्यैः
श्रीपूज्यपादगुरुवर्य्यकृपाकटाक्षा-
द्भागःसमाप्तिमगमद्गतिदो द्वितीयः ॥२॥

❀ समाप्तोऽयं द्वितीयो भागः ❀

प्रथमभागे ४० श्लोके तृतीयचरणे विनाऽसौ, इत्यस्य स्थाने न मुक्त्वा, इति पाठः कार्यः । अथवा काका व्याख्येयः ।

शुभमस्तु



द्वितिय भाग परिशिष्टांश

सब में एक व एक ही में सब है
जिन खोजा तिन पाया है ।
वही एक तो तुमही आप हो
नहीं खोजा नहीं पाया है ॥

एकत्र सर्वमखिलेष्वपि तत्त्वमेकं
यस्तज्जनो मृगयते लभते स नित्यम् ॥
त्वं तत्त्वमेकमसि तत्स्वमेव जीव
प्राप्नोति नैव यदि मार्गति नात्र कश्चित् ॥१॥

इदानीं द्वितीयभागपरिशिष्टांशेन कतिपयहिन्दीपद्यैरसंप्रज्ञातसमाधिं निरूपयन्ति पूज्यपादाः। संप्रति पद्यानि व्याख्यातुं तेषामादेशो नास्ति यतस्ते कथयन्ति प्राप्तदीक्षो जनोऽन्तर्गतिं कृत्वा "ददामि बुद्धियोगं तम्" इति भगवतः सकाशाल्लब्धबुद्धिः सन्स्वयमेव सर्वमन्तर्गूढरहस्यं ज्ञास्यत्येव, अन्तर्गतिशून्यास्तु भावप्रकाशेनापि ज्ञातुमशक्ता यतोऽयुक्तत्वात्तेषां बुद्धिर्नास्ति भगवान्युक्तेभ्यो बुद्धिं ददाति नत्वयुक्तेभ्यः। एवञ्च शक्तिसंचाररूपां दीक्षां विनाऽन्तर्गतिर्न स्यादन्तर्गतिं विना युक्तो न स्यात् युक्तत्वाभावाद्बुद्धिदानं न स्याद् बुद्धेरभावाद्गूढरहस्यवेत्ता न स्यादतस्तेषां कृते भावप्रकाशोऽपि व्यर्थप्राय एव। भगवता प्रोक्तं

युक्तत्वलक्षणमेकांशेनापि तेषु न घटते । 'यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवाऽवतिष्ठते । निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा" इति । पद्यार्थस्तु गूढोऽतो ग्रन्थविस्तरभिया नोल्लिख्यते । इदमेवाऽऽदेशाभावे कारणम् । तथापि केवलमनुमानंकारयितुं चरणद्वयेन संक्षेपतो गूढरहस्याभासमात्रमुद्घाटयिष्यामः । एकत्रेति । अखिलेषु, एकं तत्त्वमित्यन्वयः । अखिलेषु सर्वपरमाणुषु । लोहितशुक्लकृष्णवर्णात्मकेषु सर्वशून्येष्वित्यर्थः । वर्णत्रयं च क्रमतो रजःसत्त्वतमसां गुणत्रयाणां गुणत्रयात्मिका तु प्रकृतिरतस्तस्या अपि तत्रैवाधिष्ठानं बोध्यम् । "मण्डलत्रयभूषितामि"त्युक्तेः । प्रकृतेश्च त्रयोविंशतितत्त्वानामुत्पत्तिस्तेषां जडत्वाद्बहिरन्तश्चिदधिष्ठानम् । "बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च । सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्" इति गीतोक्तेः । "कालसंज्ञां तदा देवीं बिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः । त्रयोविंशतितत्त्वानां गणं युगपदाविशत्" । "सोऽनुप्रविष्टो भगवांश्चेष्टारूपेण तं गणम्" इति भागवतोक्तेश्च । एवञ्चानुलोमरीत्या सृष्टौ सर्वेष्वेकं तत्त्वमिति सिद्धम् । "यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति" इति श्रुत्या विलोमरीत्या प्रळये, एकस्मिन्नेव सर्वमित्यपि सिद्धम् । तथा च भगवद्वाक्यम् "सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि" इति । शून्यानां लोहितशुक्लकृष्णत्वन्तु "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्" इति श्रुत्या सिद्धम्, केवलं सिद्धमित्यनेनैव श्रुतेश्चारितार्थ्यं न स्यादपि च प्राप्तदीक्षा जनास्तत्क्षणादेव सर्वत्र व्याप्तं शून्यमवलोकयन्तीति निष्प्रपञ्चम् । यो जनस्तत्तत्त्वं मृगयतेऽन्विष्यति स नित्यमवश्यमेव लभते, इत्यन्वयः । अन्वेषणं तु अन्तः शरीरे एव स्यान्न तु बहिः । उक्तञ्च भागवते-"अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः" । सन्तोऽन्तर्भवे एव भवन्तं मृगयन्ति एवशब्देन बहिरन्वेषणव्यावृत्तिः सूचिता । किं कुर्वन्तः । अतत्त्यजन्तः । इदं ब्रह्म न, इदं ब्रह्म नेति

विचार्य जगत्त्यजन्तः। अयं भावः। मेरुदण्डान्तर्गतसुषुम्नानाड्यां चक्राणि वर्तन्ते सर्वेषामधस्तान्मूलाधारचक्रेऽन्नमयःकोषस्तत्र पृथिवीतत्त्वं वर्तते। तत्रैव जीवो लिङ्गरूपेण भ्रमति "अधोमुखो लिङ्गरूपो हेमाभो भ्रमणे रतः" इति तन्त्रोक्तेः। अधुनाऽपि स नाभेरुपरि हंसप्रवाहे वर्तमानस्येश्वरस्य प्राप्त्यर्थं मूलाधारान्नाभिचक्रपर्यन्तमायाति किन्तु नाभिचक्रे वर्तमानः समानो वायुरपानस्थितजीवस्य प्राणवायुस्थेश्वरस्य च परस्परसम्मेलने बाधां करोति। यद्यपि "येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मद्वारं निरामयम्। मुखेनाऽऽच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी" इति तन्त्रोक्तेर्मातृगर्भान्निष्क्रान्तस्य जीवस्य पिङ्गलायां गतिमत्त्वात्सुषुम्नाख्यस्य ज्ञानमार्गस्य च रुद्धत्वान्नाभिचक्रपर्यन्तगमनमसंभावितं तथापि नाभिचक्रस्य दक्षिणवामावर्तयोर्भ्रमणाद् दक्षिणावर्ते पिङ्गलायां वामावर्ते चाऽव्यक्तभावेन सुषुम्नायां गतिमत्त्वान्नास्ति पूर्वोक्तदोषः।

यदि गुरुकृपया दीक्षा स्यात् अर्थाद् हंससोहंप्रवाहयोरेकीभावः स्यादर्थात् "प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ" इति भगवद्वाक्यानुसारेण प्राणापानयोरेकगतिः स्यात्तदाऽधोनिर्दिष्टरीत्या समानवायोर्भेदो भवति, तथा च—नीचैः स्थितो जीव ऊर्ध्वगत्या इदं ब्रह्म नेति विचार्य पृथिवीतत्त्वं त्यजति, अर्थात् "मूलाधारचक्रं भिनत्ति, तदुपरि क्रमतः स्वाधिष्ठानचक्रे जलतत्त्वं प्राप्येदं ब्रह्म नेति विचार्य जलतत्त्वं त्यजति अर्थात् स्वाधिष्ठानचक्रं भिनत्ति, तदुपरि मणिपूरचक्रे तेजस्तत्त्वं प्राप्येदं ब्रह्म नेति विचार्य तेजस्तत्त्वं त्यजत्यर्थान्मणिपूरचक्रं भिनत्ति। तदुपरि वर्तमानेऽनाहतचक्रे वायुतत्त्वं प्राप्येदं ब्रह्म नेति विचार्य वायुतत्त्वं त्यजति, अर्थादनाहतचक्रं भिनत्ति, तदुपरि विशुद्धाख्ये चक्रे आकाशतत्त्वं प्राप्य, इदं ब्रह्म नेति विचार्याऽऽकाशतत्त्वं त्यजति–अर्थाद् विशुद्धाख्यचक्रं भिनत्ति, एवंरीत्या पाञ्चभौतिकं जगत्त्यजन्पञ्चकोषाद्बहिर्गतो जीवः षष्ठं मायाचक्रं

च भित्त्वा भूर्भुवः स्वः, इति लोकत्रयं त्यजन् ब्रह्मलोकं गच्छन् सोहं-गतिं कुर्वन्नर्थात्प्रणवमुच्चारयन्। "ततः पश्चात्प्रणवोऽसौ महामनुः" इति तन्त्रोक्तेः, पुनः संवेशयेत्स्वरम्" इत्येकादशोक्तेश्च। पुनराज्ञा-चक्रे स्थितो योगी संप्रज्ञातसमाधिमापन्नः परमात्मतत्त्वं पश्यति पश्यन्पश्यंस्तदपि चक्रं भित्त्वा सहस्रारप्रवाहमवाप्य "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" 'एकमेवाऽद्वितीयम्'इत्यादि श्रुतिशिरोवाक्यान्यालो-चयन्विज्ञानवान् सन्नसंप्रज्ञातसमाधिस्थितो भवतीति अतत्त्यजन्त इति भागवतीयपद्यस्य गूडोऽभिप्रायो नास्ति सर्वेषां बोधगम्यः। अनयैव रीत्या संसारनिवृत्तिपूर्विका स्वरूपावाप्तिः अर्थादपरोक्षानु-भूतिर्भवति। न केवलं वेदान्तिनां "सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन"इति कथनमात्रेण। उक्तोपायं विहाय नान्यः कश्चनोपाय इत्यत्र श्रुतिः प्रमाणम्। "नान्यः पन्था वर्ततेऽयनाये"ति गम्भीरो मूलाशय इत्यवधेयम्। आधुनिकास्तु योगनामोच्चारणेनैव पला-यन्ते ते योगरहस्यानभिज्ञा एव। "भगवता तस्माद्योगी भवार्जुने"-त्युपदिश्य राजविद्येति श्लोके योगसाधनं प्रत्यक्षानुभूतिजनकं दर्शयता 'सुसुखं कर्तुमव्ययमि'ति पद्येन नास्ति योगसमः सरलोपाय इति सूचितम्। योगसाधने गृहाश्रमोऽपि बाधको नेति विषये भाग-वतीयं पद्यं स्मर्तव्यम्—"गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वमि"ति। अन्यथा राज्ये स्थितस्य जनकस्य विदेहता न स्यादेवञ्च वासना एव संसार-स्तत्त्यागस्त्याग उच्यते, त्यागस्त्वनयैव रीत्येति विचार्य समस्त-शङ्काकलङ्को निःशेषं शंशम्यते। एवं पूज्यचरणानां सर्वाणि पद्यानि गूढाभिप्रायकाणि नान्तर्गतिशून्यानां बोधगम्यानीति दिङ्मात्र-मत्र प्रादर्शीति दिक्।

जड़ चेतन को मान लेकर
ख्याल में दोनों पाया है।

अपने आप को ख्याल हुआ जब
आप ही आप को पाया है ॥

तच्चेतनं जडमिदं द्वयमत्र मत्वा
स्वप्नोपमो भवति भिन्नपदार्थबोधः ।
दैवाद्यदा स्मरति रूपमिहात्मना स्वम्
आत्मानमेव लभते स्वयमेष जीवः ॥२॥

तदिति । अत्र शरीरे चेतनं सोऽहंप्रवाहात्मकं जडं हंसप्रवाहात्मकं द्वयं मत्वा संकल्प्य स्वप्नतुल्यं द्वैतज्ञानं भवति। जीवस्य रजोगुणे गतिमत्त्वाद्द्वैतस्य स्वप्नोपमत्वं स्पष्टमेव। "रजसास्वप्नमादिशेत्" इति भागवतोक्तेः । स्वं रूपमित्यन्वयः ।

आगे पीछे एक हम ही हैं बीच में हम तुम दोनों हैं।
हम तुम जब एक हुए तब हम तुम दोनौ हम ही हैं॥

सृष्टेः पुरान्तसमयेऽस्म्यहमेकरूपो
मध्येऽस्त्यहं त्वमिति वा व्यवहारभेदः ।
एकात्मकं द्वयमिदं यदि दैवयोगा-
देकोऽस्म्यहं त्वमहमत्र मिथो मिलित्वा ॥३॥

सृष्टेरिति । सृष्टेः पुराऽन्तसमये च, अहमेकरूपोऽस्मि। आज्ञाचक्रात्सहस्रारपर्यन्तो यो विकर्मसंज्ञकः प्रवाहस्तत्प्रवाहस्थत्वादित्यर्थः। मध्ये शब्दप्रवाहमध्ये। अहं त्वं, च इति व्यवहारतो

भेदः। विशेषेण, अव नीचैर्हरणं कर्षणं व्यवहारः। यदि, अत्र शरीरे दैवयोगादहं त्वं, इदं द्वयं पदं चिच्चिदाभासरूपं मिथः परस्परं मिलित्वा। प्रतिबिम्बात्मकस्याऽधःशून्यस्योपरि बिम्बस्थ-शून्ये लयादित्यर्थः। एकात्मकं स्यात्तर्हि, अहमेकोऽस्मीति संक्षेपः।

हम और तुम तो दुई नहीं हैं शब्द ही में तो हम तुम हैं।
वही शब्द तो ओंकार है जिससे सारा पसारा है ॥

त्वय्यस्ति मय्यपि न कुत्सितभेदशङ्का
शब्दादहं त्वमिति वा व्यवहार एषः।
शब्दः स एव गदितः प्रणवस्वरूपो
लोकद्वयस्य विविधोऽस्ति यतः प्रसारः ॥४॥

त्वयीति। त्वयि चिदाभासे मयि चिति। शब्दः प्रणवस्वरूपः। स च प्रणवः पञ्चात्मकः। अकारोकारमकारनादबिन्दुरूपः। "अश्च उश्च मकारश्च नादो बिन्दुश्च पञ्चमः" इति काशीखण्डोक्तेः। यतः प्रणवात् लोकद्वयस्य, अन्तर्जगतो बहिर्जगतश्च। "अन्तःपुरुषरूपेण कालरूपेण यो बहिः" इति भागवतोक्तेः। विविधोऽनन्त एकरूपश्च प्रसारो विस्तरः। क्रमतो हंसप्रवाहे सोऽहंप्रवाहे चेत्यर्थः।

जब तक शब्द है तब तक सब कुछ है
शब्द नहीं तो कुछ भी नही है।
ॐकार को चढ़ा लिया तो
आप ही आप अकेला है ॥

शब्दोऽस्ति यावदिह तावदनन्तमेकं

शब्दस्य किञ्चिदपि नात्र भवत्यभावे ।

उत्थापयेत्प्रणवमूर्ध्वमिमं विकृष्य

स्यादेककः स पुरुषः स्वयमात्मभूतः ॥५॥

शब्द इति । शब्दः शब्दप्रवाहः । अनन्तं हंसप्रवाहे । एकं सोऽहंप्रवाहे । मायाचक्रान्नाभिचक्रपर्यन्तो हंसप्रवाहः । आज्ञाचक्रान्मायाचक्रपर्यन्तः सोऽहंप्रवाह इति विवेचनीयम् । शब्दस्याऽभावे किञ्चिदपि चिज्जडं वा नास्ति । उभयोः सङ्कलिपतत्वादिति भावः । इमम् , अन्तःस्थितमोङ्कारमाकृष्य, ऊर्ध्वम्, अनाहतादिचक्रेपूत्थापयेत् । एवं कृते सति स योगी पुरुषः स्वयमात्मभूतः सन्नेक एक स्यादित्यन्वयः । उक्तञ्च भागवते—"हृद्यविच्छिन्नमोङ्कारं घण्टानादं विसोर्णवत् । प्राणेनोदीर्य तत्राऽथ पुनः संवेशयेत्स्वरम्" इति ।

जब तक खेल है तब तक सब कुछ है

हार जीत भी दोनौ है ।

खेल खतम तो सब कुछ खतम

हार जीत सब झूठी है ॥

मायाविलासपर्यन्तमनन्तमेकं

द्वैतप्रतीतिरपि चिज्जडबोधरूपा ।

मायाद्वयाद्यदि बहिः सकलं समाप्तं

बन्धस्तथा चिदुपलब्धिरतीव मिथ्या ॥६॥

मायेति । मायाविलासपर्यन्तम् । हंससोहंप्रवाहपर्यन्तमित्यर्थः। अनन्तं नाम रूपञ्च हंसप्रवाहे। एकं शब्दब्रह्म सोऽहंप्रवाहे। "ब्रह्मादितृणपर्यन्तं मायया कल्पितं जगत्। सत्यमेकं परब्रह्म विदित्वैव सुखी भवेत्" इति तन्त्रोक्तेः। अस्यैव विवरणं–द्वैतप्रतीतिरिति। उभयोर्बहिः स्वरूपावस्थितो भूत्वा स्वात्मलाभं कुर्यात्। तथा च योगसूत्रम् "तदा द्रष्टुः स्वरूपावस्थानम्"। बन्धस्य चिदुपलब्धेश्चाभावादित्यर्थः। "बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः। गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम्" इति भागवतोक्तेः।

बात ही में सब कुछ बात ही में हार जीत
बात ही में हँसना रोना है।
बात ही तो शब्द है व शब्द ही तो ओंकार है
गूँगा होय तो कुछ भी नहीं है॥

सर्वं तथैकमजयो विजयश्च शब्दे
दुःखानुभूतिरपि चात्र सुखानुभूतिः।
शब्दात्मकः प्रणव ईरितमस्ति शब्दः
शब्दादतीतपदभाग्यदि नास्ति किञ्चित्॥७॥

सर्वमिति। शब्दे शब्दप्रवाहे सर्वमनन्तं तथैकम्। तत्र हंसाख्ये शब्दप्रवाहे। अजयो जडबोधत्वात्। विजयः सोऽहंप्रवाहे चैतन्यबोधत्वात्। अस्यैव विवरणं—दुःखानुभूतिरिति। सा तु, आद्ये। सुखानुभूतिः। अन्ते। ईरितं कथनं तच्च वार्तारूपमेव। भावे क्तः। शब्दातीतपदम्। आज्ञाच सहस्रारचक्रपर्यन्तम्।

सब व कुछ तो अनन्त एक है माया ब्रह्म तो वही है।
अनन्त रूप नाम एक आत्मा दोनौ शून्य ही शून्य हैं॥

मायाऽस्त्यनन्तपदगोचरशक्तिरूपा
ब्रह्मैव किञ्चिदभिधायकमेकतत्त्वम् ।
रूपं च नाम विविधं जगदेक आत्मा
सिद्धान्ततो भवति शून्यमिदं समस्तम्॥८॥

मायेति। अनन्तपदगोचरा नामरूपविषयिणी या शक्तिस्तत्स्वरूपा-हंसात्मिका माया। किञ्चिदभिधायकं किञ्चित्पदप्रतिपादकं सोऽहमात्मकं ब्रह्म। जगत्; अन्तर्जगत्। एक आत्मा। "अयमात्मा ब्रह्म" इति श्रुतेः। वस्तुतः सर्वं शून्यमेव। तस्य ज्ञानं तु दीक्षां विना न स्यात्। "सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्" इति गीतोक्तेः।

जहाँ शून्य वहाँ शब्द है
जहाँ शब्द वहाँ बात है।
जहाँ बात वहाँ सब कुछ है
बात नहीं तो कुछ भी नहीं है॥

शून्याऽस्तिता भवति यत्र स तत्र शब्दः
शब्दाऽस्तिता भवति तत्र सदैव वार्ता।
वार्ताऽस्तिता भवति तत्र समस्तमेकं
वार्ता विना न चिदचित्किमपोह वस्तु॥९॥

शून्येति। यत्र शून्याऽस्तिता शून्यास्तित्वं तत्र शब्दो भवति शून्यस्याऽऽधारत्वं शब्दस्याधेयत्वं स्पष्टमेव। यत्र शब्दस्याऽस्तित्वं तत्र वार्ता वागारम्भः। समस्तमनन्तम्।

शून्य से धुन व धुन से शब्द,
व शब्द ही तो बात है।
धुन व शब्द तो दोनौ शून्य हैं,
शून्य ही में तो ॐकार है॥

शून्याद्ध्वनिर्ध्वनिविनिर्गत एव शब्दः
शब्दात्मिका भवति वाक्सरणिर्विचित्रा।
शून्यात्मकं द्वयमिदं ध्वनिरस्ति शब्दः
शब्दात्मकः स प्रणवोऽत्र शरीरमध्ये॥१०॥

शून्यादिति। शून्याद् विन्दुरूपात्। आज्ञाचक्रस्थत्वादिति भावः। ध्वनिर्नादः। ध्वनिविनिर्गतः शब्दो वर्णात्मकः। शब्दो ध्वनिश्च इदं द्वयं शून्यात्मकं शून्यस्वरूपमस्ति। शब्दात्मकः स प्रणवोऽत्र शरीरमध्य एवेत्यन्वयः।

अनाहत शब्द ॐकार में मन ही का सब पसारा है।
मन के लय से सब लय होवै ॐकार तब कहाँ है॥

शब्दोऽस्त्यनाहत इह प्रणवो विचित्रः
सर्वात्मनाऽत्र मनसो विविधः प्रसारः।
लीने मनस्यखिलवस्तु यदा विलीनं
शब्दात्मकः स प्रणवोऽपि गतस्तदोर्ध्वम्॥

शब्द इति। इह शरीरे। अनाहतोऽनाहताख्यः शब्दः प्रणव ओङ्कारोऽस्ति। कथंभूतः। विचित्रः सूत्ररूपत्वात्। "विसोर्णवत्" इति भागवतोक्तेः। अत्र प्रणवे सर्वात्मना सर्वप्रकारेण मनस इच्छाशक्तेर्विविधोऽनन्तः। जडचैतन्यरूप इत्यर्थः। प्रसारो विस्तरः। "सर्वं जातं जायमानमोङ्कारेऽत्र प्रतिष्ठितम्। तस्मादोङ्कारजापी यः स मुक्तो नाऽत्र संशयः" इति तन्त्रोक्तेः। मनसि लीने यदाऽखिलवस्तु विलीनं तदा शब्दात्मकः प्रणवोऽप्यूर्ध्वं गतः। अकार उकारे गतः उकारो मकारे गतः, मकारो नादे गतः, नादो बिन्दौ गतः, बिन्दुश्चिति गत इति विवेचनीयम्।

शून्य ही में तो शब्द है और ॐकार ही तो शब्द है।
व्यक्त व अव्यक्त होवे यही तो मन का खेल है॥

शब्दोऽत्र शून्यमधिकृत्य विराजमानः
शब्दो बुधैर्निगदितः प्रणवस्वरूपः।
अव्यक्तता यदि समा प्रकृतेरवस्था
व्यक्तत्वमस्य विषमैष मनोविलासः॥१२॥

शब्द इति। अत्र शरीरे शून्यं शून्यप्रवाहमधिकृत्य शब्दो विराजते। यदि प्रकृतेर्गुणत्रयात्मिकायाः समाऽवस्था साम्यावस्था स्यात्तदाऽस्याऽव्यक्तता। यदि च प्रकृतेर्विषमा वैषम्यावस्था स्यात्तदाऽस्य शब्दस्य व्यक्तत्वम्। वस्तुतस्त्वेष मनोविलास इत्यन्वयः।

शून्य छोड़ के कुछ भी नहीं है,
हर एक शून्य में हम ही हैं।
सिवाय हमारे दूसरा कौन है,
हम ही सर्वव्यापक हैं॥

शून्यं विहाय नहि किञ्चिदपीह वस्तु
प्रत्येकशून्यमवलम्ब्य गतोऽहमन्तः ।
मत्तो न कश्चिदितरः प्रतिभाति, सर्वं
व्याप्नोम्यहं खलु चराचरमेकरूपः ॥१३॥

शून्यमिति। किञ्चिदपि वस्तु नास्ति किन्तु शून्यमेव। तस्य सर्वत्र व्याप्तत्वादिति भावः। उक्तञ्च – "अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्। तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः"। अवलम्ब्याऽऽश्रित्य। अन्तर्गतोऽन्तःप्रविष्ट। मत्तोऽन्यः कश्चिदपि न प्रतिभाति। सर्वमित्युत्तरान्वयि। उक्तञ्च—भागवतीये द्वितीयस्कन्धे—'अहमेवाऽऽसमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्। पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्'इति॥

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" जाको वेद वेदान्त सब कहत हैं।
वही ब्रह्म तो एक हमही हैं और नहीं कोई दूजा है॥

ब्रह्मेदमेव सकलं जगदस्ति वेदा
वेदान्तशास्त्रनिचयाः प्रतिपादयन्ति ।
तद्ब्रह्म नूनमहमस्मि सदेकरूपं
कश्चिद्द्वितीयपदभाङ् न भवेत्कदापि ॥१४॥

ब्रह्मेति। इदं सकलं जगद्ब्रह्मैव, इति वेदा वेदान्तशास्त्रकदम्बाश्च निरूपयन्ति। "ब्रह्मैवेदं जगत्सर्वं नेह नानाऽस्ति किञ्चन" इतिश्रुतेः। "इदं हि विश्वं भगवान्"—इति भागवतोक्तेश्च। सत्, नित्यम्,

एकरूपं तद्ब्रह्म नूनमहमस्मि। द्वितीयपदभाक्कश्चिदपि न। "द्विती-याद्वै भयं भवति" इति श्रुतेः। भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यात्" इति भागवतोक्तेश्च। एवञ्चाऽद्वैतपक्ष एव सर्वसम्मतः।

सब कुछ खोजा सब कुछ पाया
अन्त कुछ नहीं पाया है।
जब पाया तो आप ही को पाया
आप ही को तो खोया है॥

मार्गत्यनन्तमिदमेकमनन्तमेकं
प्राप्नोत्यथापि लभते नहि किञ्चिदन्ते।
लाभं करोति यदि तर्हि निजात्मनोऽसौ
विस्मृत्य रूपममलं स यतः स्वमास्ते॥१५॥

मार्गतीति। साधनावस्थायां योगी। अनन्तं जडं, एकं चैतन्यञ्च। मार्गति, अन्विष्यति। हंससोऽहंप्रवाहयोरित्यर्थः। न तु बहिः। पुनर्द्वयमपि प्राप्नोति। अथाप्यन्ते स्वरूपावस्थाने किञ्चिदपि चिज्जडं न लभते। तयोर्मायात्मकत्वादित्यर्थः। उक्तञ्च-'भागवते'-ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चाऽऽत्मनि। तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः" इति। असौ योगी यदि लाभं करोति तर्हि निजात्मन एव। यतः सोऽमलं दिव्यं स्वं रूपं विस्मृत्याऽऽस्ते।

सब कुछ पाया आपको खोया
नहीं पाया नहीं खोया है।

पाना खोना दोनों भ्रम ही है
बात ही में पाना खोना है ॥

स्वास्फूर्तिरेव यदि चिज्जडबोधवान्स्या-
न्नो विस्मृतिर्यदि स चिज्जडबोधशून्यः ।
स्वस्याऽस्मृतिश्चिदुपलब्धिरिति भ्रमो हि
शब्दप्रवाहगतितः पृथगेष बोधः ॥१६॥

स्वेति । यदि चिज्जडबोधवान् सोऽहंहंसप्रवाहगामी स्यात्तदा स्वास्फूर्तिः स्वरूपविस्मृतिः । यदि स चिज्जडबोधशून्यः प्रवाहद्वयगतिशून्यस्तदा नो विस्मृतिः न स्वरूपविस्मृतिः । ब्रह्मणि प्रतिष्ठानादिति भावः । "एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति" इति गीतोक्तेः । वस्तुतः स्वस्य रूपस्याऽस्मृतिर्विस्मृतिश्चैतन्योपलब्धिश्च भ्रमः । हि यतः पृथग्बोधः शब्दप्रवाहे या गतिर्गमनं तस्माद्भवतीति शेषः ।

गुरुवाक्य को मान लेकर अपना काम जो साधा है ।
घर पहुँच कर देखे तब तो आप ही आपको पाया है ।

हंसात्मकं गुरुवचो यदि कल्पयित्वा
कुर्यादधः पतनमूर्ध्वगतिं स्वकर्म ।
तर्हि क्रमात्सकलचक्रपदानि भित्वा
स्वात्मानमेव स लभेत गुरोः कृपातः ॥१७॥

हंसेति। हंसात्मकं हंसमन्त्रात्मकं गुरुवचः शून्यसूत्ररूपं कल्पयित्वा सङ्कल्प्य। उक्तञ्च पुराणादौ—"शिवादिक्रिमिपर्यन्तं प्राणिनां प्राणवर्त्मनः। निःश्वासोच्छ्वासरूपेण मन्त्रोऽयं वर्तते प्रिये"। "सः कारेण बहिर्याति हंकारेण विशेत्पुनः। हंस हंसेति मन्त्रं वै जीवो जपति सर्वदा"इति। अधः पतनं संचारः। ऊर्ध्वगतिः प्रत्याहारः। तथा च योगसूत्रं—"प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य" इति। इदमेव स्वकर्म यदि कुर्यात्। गीतायामपि "कुरु कर्मैव तस्मात्त्वम्" इत्यनेनेदमेव कर्म दर्शितं न तु बाह्यम्। प्राणगतिं बिना-बाह्यकर्मकरणस्याऽशक्यत्वादिति भावः। सकलचक्रपदानि मूलाधारादीनि भित्त्वा स जीवः स्वात्मानमात्मस्वरूपं लभते। कस्माद् गुरोः कृपातः। "मोक्षमूलं गुरोः कृपा"इत्युक्तेः।

गुरु चेला हम और तुम यह सब शब्द ही का पसारा है।
शब्द नहीं तो कुछ भी नहीं हम और तुम तब एक ही हैं॥

शिष्यो गुरुस्त्वमहमित्यखिलः प्रसारः
शब्दात्मकस्य गदितः प्रणवस्य लोके।
शब्दाऽस्तिता यदि न तर्हि समस्तमस्तं
त्वं वाऽहमस्मि मिलितो मिथ एकरूपः॥ १८॥

शिष्य इति। शिष्यस्त्वं जीवरूपः। हंसप्रवाहे। गुरुः शब्द-ब्रह्म, अहं सोऽहंप्रवाहे। अखिलः प्रसारो जडचैतन्यरूपो विस्तरः लोके भूरादित्रये शब्दात्मकस्य शून्यात्मकस्य प्रणवस्योङ्कारस्य गदितः। योगिभिरिति शेषः। "विसोर्णवत्" इति भागवतोक्तेः। यदि शब्दाऽस्तिता शून्यात्मकप्रवाहद्वयस्याऽस्तित्वं न तर्हि समस्तमनन्तमेकञ्च, अस्तं नष्टम्। तथा सति अहं ब्रह्म त्वं जीवश्च बिम्बप्रति-

बिम्बरूपः । चार्थे वा शब्दः । मिथः परस्परं मिलितः सन्नेकरूपोऽस्मि । "एकमेवाऽद्वितीयम्" इति श्रुतेः ।

संकल्प से गुरू चेला दोनौ तुमने पाया है ।
निर्विकल्प होय तो गुरुचेला हम तुम दोनौ हम ही हैं ॥

संकल्पमात्रमनुसृत्य गुरुश्च शिष्यः
शब्दद्वयेन भवतोऽत्र विभागभाजौ ।
स्यान्निर्विकल्पपदता यदि दैवयोगा-
च्छिष्यो गुरुस्त्वमहमादि सदाऽहमस्मि १९

सङ्कल्पेति । सङ्कल्पः, एकोऽहं बहुः स्यामित्येवंरूपः । गुरुश्चित्स्वरूपः शिष्यश्चिदाभासरूपः अत्र प्रवाहद्वये विभागभाजौ पृथङ्नामानौ । निर्विकल्पपदमसंप्रज्ञातसमाधिः ।

मन के संकल्प को मान लेकर
शरीर व आत्मा पाया है ।
जड़ शरीर व चेतन आत्मा
माया ब्रह्म तो वही है ॥

अध्यस्य मोहवशतोऽत्र मनोविकल्पा-
नात्मा शरीरमिति भेदविशिष्टसत्ता ।
मायाभिधं गदितमस्ति जडं शरीरं
ब्रह्माभिधं भवति चेतनमात्मतत्त्वम् ॥२०॥

अधीति। मोहवशतो विद्याद्वयसङ्गवशात्। उक्तञ्च भागवते-"विद्याविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम्। बन्धमोक्षकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते" इति। गीतायामपि—"मोहजालसमावृताः" इति। मनोविकल्पान्मनः सङ्कल्पान्। अध्यस्याऽऽत्मनि। अहमस्य कर्मणः कर्तेत्येवंरूपेणेत्यर्थः। "एवं पराभिध्यानेन कर्तृत्वं प्रकृतेः पुमान्। कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैरात्मनि मन्यते" इति तृतीयस्कन्धोक्तेः। आत्मा शरीरम्—अस्यैव विवरणं मायाभिधमित्यादि।

शरीर व आत्मा छोड़कर
जो परमात्मा को पाया है।
निर्विकल्प समाधी में वह
आप ही आपको पाया है॥

हंसश्च सोऽहमिति यः क्रमतो विहाय
संप्राप्नुयादुपरि तत्परमात्मतत्त्वम्।
आत्मस्वरूपमधिगच्छति निर्विकल्पे
योगी स्थितो यदि विलीनमनाःसमाधौ। २१।

हंस इति। हंसो जडप्रवाहः। सोऽहं चैतन्यप्रवाहः। विहाय उपरि, आज्ञाचक्रादुपरि सहस्रारप्रवाहे। निर्विकल्पे समाधौ, इत्यन्वयः। अधिगच्छति प्राप्नोति।

तीन गुण को मान लेकर
आप ही आपको फँसाता है।
निर्विकल्प से निर्गुण होय जब
तब कौन किसको फँसाता है॥

संकल्पतः प्रकृतिजेन गुणत्रयेण
बध्नात्ययं बत मुधा स्वयमात्मना स्वम् ।
तन्निर्विकल्पपदमेत्य यदाऽगुणः स्याद्
बध्नाति कः कमिह केवलमात्मसत्त्वात् २२

सङ्कल्पेति । प्रकृतिजेन प्रकृतिकार्येण गुणत्रयेण सत्त्वरजस्तमोरूपेण । बतेत्याश्चर्ये । अयं जीवः स्वयमात्मना स्वमात्मानं मुधा मिथ्यैव सङ्कल्पतो बध्नाति न तु वस्तुतः । सुषुम्नायां सत्त्वगुणः । पिङ्गलायां रजोगुणः । इडायां तमोगुणः । जीवस्तु पिङ्गलायामित्यवधेयम् । यदा निर्विकल्पपदं प्राप्याऽगुणो गुणसंबन्धशून्यो निर्गुणस्तदा केवलम् । आत्मसत्त्वाद्धेतोः । कः कं बध्नाति । न कमपीत्यर्थः । "आत्मावास्यमिदं" इति भागवतोक्तेः ।

मन ही का संकल्प है सब
मन लय होय तो कुछ भी नहीं है ।
निर्विकल्प समाधी में
आप ही आप अकेला है ॥

संकल्प एष मनसोऽस्ति विकल्परूपो
लीने मनस्यखिलवस्तु भवेद्विलीनम् ।
योगी स्थितो यदि कथञ्चन निर्विकल्पे
स्वात्मैव सर्वमिदमस्ति जगत्समाधौ ॥२३॥

सङ्कल्प इति । एष विकल्परूपो जड़चैतन्यरूपः । मनसः ।

रजोगुणात्मिकाया इच्छाशक्तिप्रधानायाश्चिच्छक्तेरित्यर्थः। सङ्कल्पः कल्पना। मनसि लीने सत्यखिलं वस्तु विलीनं तिरोहितम्। योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः सोऽस्याऽस्तीति योगी। कथञ्चनेत्यनेन तस्य दुर्लभत्वं सूचितम्। "यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः" इति गीतोक्तेः। निर्विकल्पे समाधौ, आज्ञाचक्रादुपरि सहस्रारचक्रप्रवाहे यदि स्थितस्तर्हि सर्वं जगत्स्वात्मैव। "आत्मैवेदं जगत्सर्वं" इति श्रुतेः।

वही आप तो सच्चिदानन्द परब्रह्म तो वही है।
संकल्प से गुरुचेला हम तुम एक ही परब्रह्म है॥

सच्चित्सुखात्मकमनादि परं यदेकं
ब्रह्मैव तत्त्वमसि तस्य सदैव सत्त्वात्।
शिष्यो गुरुस्त्वमहमित्यभिकल्प्य भेदो
ब्रह्मैकमेव सकलं मिथुनं परं तत्॥२४॥

सच्चिदिति। सच्चित्सुखस्वरूपं, अनादि यदेकं परंब्रह्म तदेव त्वमसि। कथमित्याशयेनाह-तस्येति। तस्य ब्रह्मणः सदैवेत्यनेन कालत्रयाबाध्यत्वं सूचितम्। सत्त्वात्, अणुप्रविष्टचैतन्यत्वात् "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" इति श्रुतेः। त्वमहमिति मिथुनं द्वयं संकल्प्य भेदव्यवहारो भवति। वस्तुतः सकलं तदेकं परंब्रह्मैवेत्यन्वयः।

श्यामा ही तो गुरु हैं
और ॐकार उनका चरन है।
प्राण मन से चरन धरिके
तुमको भव जल पार उतरना है॥

श्यामा गुरुर्भवति तस्य गुरु र्गुरूणा-
मोंकार एव चरणो दिवि वर्तमानः।
प्राणैश्च शुद्धमनसा चरणं गृहीत्वा
पारं प्रयाहि भवसागरमध्यतस्त्वम् ॥२५॥

श्यामेति। गुरूणां बाह्यगुरूणामपि गुरुः श्यामा चिच्छक्तिर्गुरुः तस्य गुरोर्दिवि महाकाशे। मायाचक्रादुपर्याज्ञाचक्रप्रवाहे, इत्यर्थः। वर्तमान ओङ्कारः प्रणव एव। नादबिन्दुरूप इत्यर्थः। "नमो नादात्मने तुभ्यं नमो बिन्दुकलात्मने" इति काशीखण्डोक्तेः। चरतीति चरणः। सोऽहंप्रवाहरूप इत्यर्थः। चरणं ज्ञानमार्गं। मुक्तिमार्गमित्यर्थः। सुषुम्नामार्गमिति यावत्। "मुक्तिमार्गं प्रदर्शयन" इति काशीखण्डोक्तेः। गृहीत्वाश्रित्य हे जीव भवसागरमध्यतः पारं प्रयाहि।

नारायणान्तस्य हरेः प्रसादात्
पद्यैर्विचित्रैरधिकाशि दिव्यैः।
सन्निर्विकल्पाख्यसमाधितत्त्वं
पौराणिकैर्लोकहितार्थमुक्तम् ॥ २६ ॥

नारायणेति। नारायणोऽन्ते यस्य तस्य, एवं भूतस्य हरेः। हरिनारायणस्येत्यर्थः। विचित्रैर्दिव्यैः पद्यैः। अधिकाशि काश्याम्। अव्ययीभावः। पौराणिकैरस्माभिः सन् योगिनां स्वरूपपरिचायकत्वाच्छ्रेष्ठो यो निर्विकल्पाख्योऽसंप्रज्ञातसमाधिस्तस्य तत्त्वं रहस्यं लोकहितार्थमुक्तम्। परिशिष्टांशे श्लोकानां साधारणतया सङ्गतिर्दर्शिता न त्वभिप्राय इति विवेचनीयम्।

ॐ

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।

मा या

चित्र

मायायन्त्र

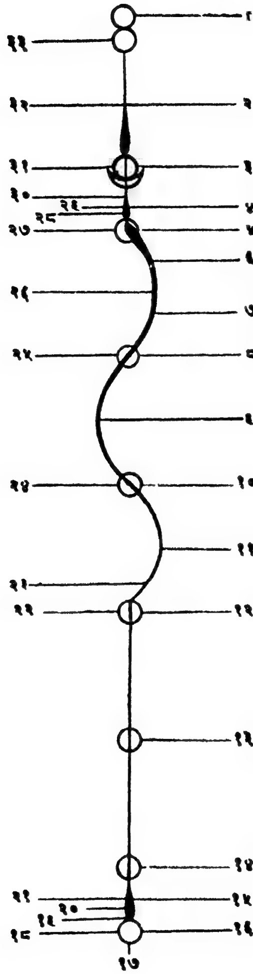
परि चय

य त्र

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

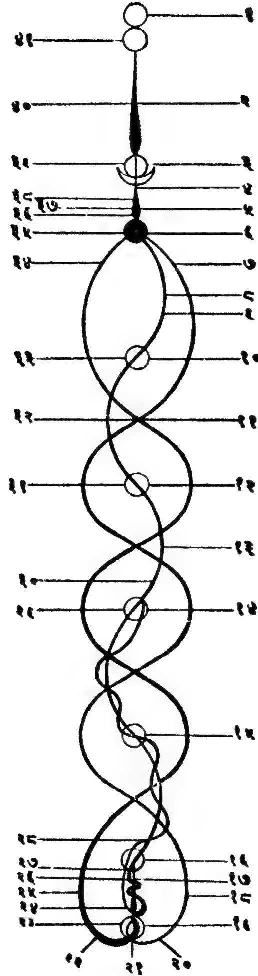
भ. गी.
१८।६१

❀ प्रथम चित्र ❀



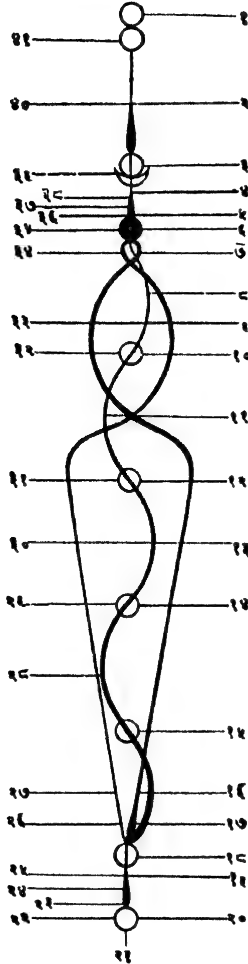
(गर्भावस्था)

❀ द्वितीय चित्र ❀



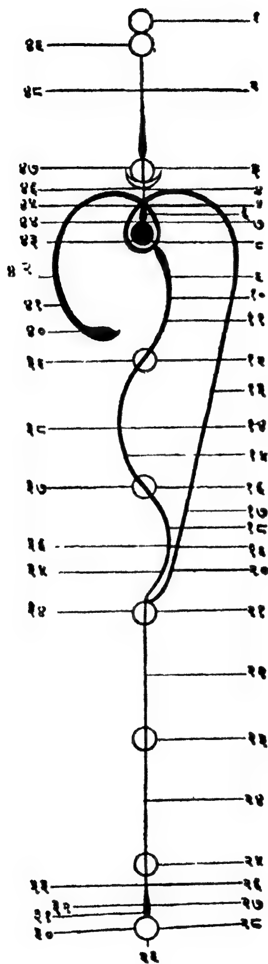
(भूमिष्ठावस्था)

❁ तृतीय चित्र ❁



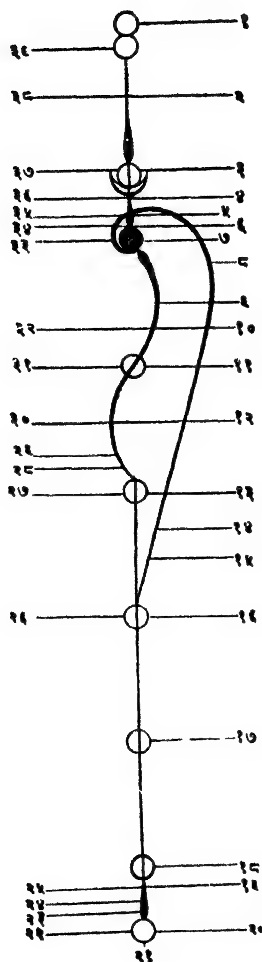
(प्रथमदीक्षा)

❀ चतुर्थ चित्र ❀



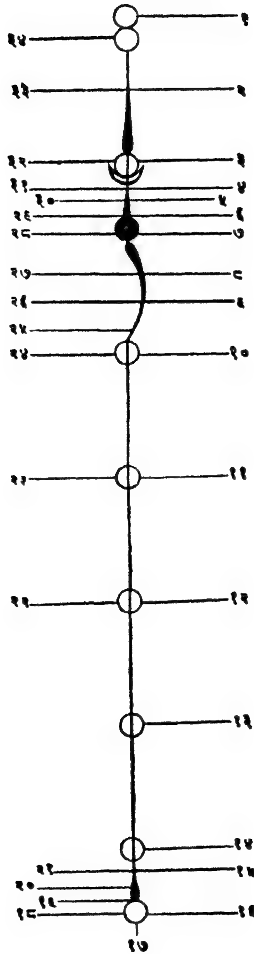
(द्वितीयदीक्षा)

पञ्चम चित्र



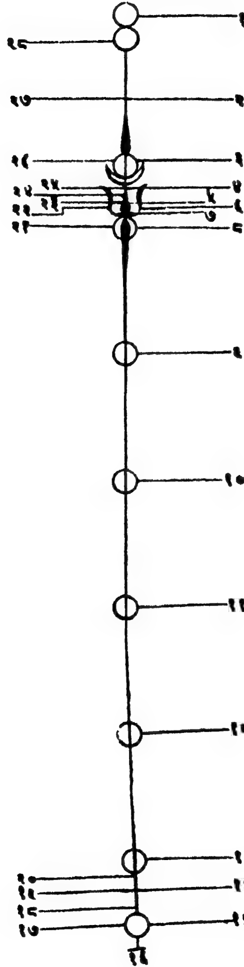
(तमोगुणप्रत्याहृत)

षट चित्र



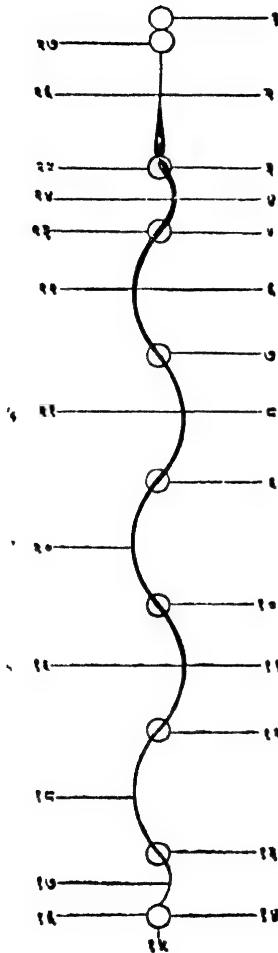
(रजोगुणप्रत्याहृत)

❀ सप्तम चित्र ❀



(सत्त्वगुणप्रत्याहृत)

❀ अष्टम चित्र ❀



संप्रज्ञात (सविकल्प) समाधि

नवम चित्र

१३ १ १२ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११

असंप्रज्ञात (निर्विकल्प) समाधि

* चित्र परिचय *

प्रथम चित्र—गर्भावस्था

(१) सहस्त्रार, सूर्यमण्डल, ब्रह्मरन्ध्र, वैकुण्ठ, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परंब्रह्म, महाकाल, सत् , चित् , आनन्द ॥

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, सत् ॥

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्मयकोष, अग्निमण्डल, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मद्वार, परंपद, त्रिवेणी, सुदर्शनचक्र दिव्यचक्षु, गवाक्षमण्डल, भ्रामरीगुहा ।

(४) तामससत्त्वात्मक चित्तरूपी शिव, शब्द-ब्रह्म, इतरलिङ्ग, म प्रणव, सोऽहं, काल, साक्षी, तत् ।

(५) मायाचक्र, चन्द्रमण्डल, पिण्ड, स्वः, स्वर्ग, स्वर्गद्वार, कालचक्र, दशमद्वार, द्यावाभूमि, त्रिकुटी ।

(६) सत्त्वगुणात्मक अहङ्काररूपी विष्णु, बाणलिङ्ग, अ, ईश्वर, नियन्तृ, हंसः, ओं ॥

(७) तमः, म, साम, शिव, प्राज्ञ, चन्द्र ॥

(८) विशुद्धाख्य, आनन्दमयकोष, भुवः, मर्त्य ॥

(९) रजः, उ, यजुः, ब्रह्मा, तैजस, सूर्य ॥

(१०) अनाहत, ईश्वर, नियन्तृ, विज्ञानमयकोष ॥

(११) सत्त्व, अ, ऋक्, विष्णु, विश्व, अग्नि।

(१२) मणिपूर, मनोमयकोष, सूर्यमण्डल, भूः, पाताल, जीव, नियम्य ॥

(१३) स्वाधिष्ठान, प्राणमयकोष ॥

(१४) मूलाधार, अन्नमयकोष ॥

(१५) राजससत्त्वात्मक मनोरूपी ब्रह्मा, स्वयंभूलिङ्ग उ. जीव ॥

(१६) आधारचक्र ॥

(१७) सुषुम्ना ॥

(१८) शुद्धसत्त्वात्मिका पराबुद्धिरूपा ज्ञानशक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति अर्थात् चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया, तारा ॥

(१९) सूक्ष्म ॥

(२०) मात्रा, मध्यमा ॥

(२१) रजः, सूर्य, सरस्वती, ब्राह्मी ॥

(२२) ब्राह्मी, इच्छाशक्ति, मन, रजः, काली ॥

(२३) स्थूल + व्यञ्जन, पश्यन्ती ॥

(२४) वैष्णवी, ज्ञानशक्ति, बुद्धि, सत्त्व, तारा ॥

(२५) गौरी, क्रियाशक्ति, अहङ्कार, तमः त्रिपुरसुन्दरी ॥

(२६) सत्त्व, अग्नि, गङ्गा, वैष्णवी, विद्या ॥

(२७) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रिया-शक्तिप्रधाना मायाशक्ति अर्थात् जड़शक्तिस्वरूपा योगमाया, त्रिपुरसुन्दरी + इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया ॥

(२८) तमः, चन्द्र, यमुना, गौरी ॥

(२९) कारण ॥

(३०) स्वर, परा ॥

(३१) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्ति-प्रधाना चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, काली ॥

(३२) एकमेवाऽद्वितीयम्, महाकारण ॥

(३३) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महा-माया, महाकाली, ललनाचक्र, कैवल्य ॥

❋ प्रथम चित्र रहस्य ❋

गर्भावस्था, विलोमगति, मायाशक्ति अर्थात् जड़शक्तिस्वरूपा योगमाया व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया की एकात्मता,-लिङ्गत्रय का संस्थान, साक्षीस्वरूप से काल का अधिष्ठान, नियन्तृ नियम्यस्वरूप से ईश्वर व जीव का अवस्थान, मायाशक्ति के संग होने के कारण ब्रह्म को आत्मविस्मृति व विपर्ययवशतः जीवत्वभ्रम, ब्रह्मशक्ति का पतन माया शक्ति का अभ्युत्थान, बद्धावस्था, हंसः सोऽहं शब्द के साथ शिव शक्ति की गति। योगावस्था ॥

---

* चित्र परिचय *

द्वितीयचित्र–भूमिष्ठावस्था

(१) सहस्रार, सूर्यमण्डल, ब्रह्मरन्ध्र, वैकुण्ठ, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परंब्रह्म, महाकाल सत्, चित्, आनन्द।

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, सत्।

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्मयकोष, अग्निमण्डल, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मद्वार, परंपद,–रुद्रग्रन्थि, त्रिवेणी, सुदर्शनचक्र, गवाक्षमण्डल, भ्रामरीगुहा, दिव्यचक्षु,

(४)तामससत्त्वात्मक चित्तरूपी शिव, शब्द-ब्रह्म, इतरलिङ्ग, म, काल, साक्षी, प्रणव, सोऽहं, तत्॥

(५) सरस्वती॥

(६) मायाचक्र, चन्द्रमण्डल, स्वः, स्वर्ग, स्वर्गद्वार, विष्णुग्रन्थि, त्रिकुटी, दशमद्वार, कालचक्र, द्यावाभूमि।

(७) पिङ्गला, यमुना॥

(८) तमः, म, साम शिव, प्राज्ञ, चन्द्र ॥

(६) सत्त्वगुणात्मक अङ्काररूपी विष्णु, ईश्वर, वाणलिङ्ग, अ, हंसः, ओं ॥

(१०) विशुद्धाख्य, भुवः, मर्त्य, आनन्द-मयकोष ॥

(११) सत्त्व, अ, ऋक्, विष्णु, विश्व, अग्नि ॥

(१२) अनाहत, विज्ञानमयकोष, ईश्वर, नियन्तृ ॥

(१३) रजः, उ, यजुः, ब्रह्मा, तैजस, सूर्य, ॥

(१४) मणिपूर, मनोमयकोष, भूः, पाताल, सूर्यमण्डल, जीव, नियम्य, तामिस्त्र ॥

(१५) स्वाधिष्ठान, प्राणमयकोष, अन्धतामिस्त्र ॥

(१६) मूलाधार, अन्नमयकोष, ब्रह्मग्रन्थि, रौरव ॥

(१७) राजससत्त्वात्मक मनोरूपी ब्रह्मा, जीव, स्वयंभूलिङ्ग, उ ॥

(१८) रजोगुणात्मिका विक्षेपशक्तिरूपा अविद्या ॥

(१९) आधारचक्र ॥

(२०) दक्षिणावर्त, पिङ्गला, देवयान, रजः सूर्य, पुरुष ॥

(२१) सुषुम्ना ॥

(२२) वामावर्त, इडा, पितृयान, तमः, चन्द्र, प्रकृति ॥

(२३) शुद्धसत्त्वात्मिका परात्बुद्धिरूपा ज्ञान-शक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति अर्थात् चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया, तारा ।

(२४) रजः, सूर्य, सरस्वती, ब्राह्मी ॥

(२५) तमोगुणात्मिका आवरणशक्तिरूपा अविद्या ॥

(२६) सूक्ष्म ॥

(२७) मात्रा, अनुदात्त, ह्रस्व, सुदारा, मध्यमा ॥

(२८) सत्त्व, अग्नि, गंगा, वैष्णवी, विद्या-शक्ति ॥

(२९) ब्राह्मी, इच्छाशक्ति, मन, रजः, काली ॥

(३०) स्थूल ॥

(३१) वैष्णवी, ज्ञानशक्ति, बुद्धि, सत्त्व, तारा ॥

(३२) व्यञ्जन, स्वरित प्लुत, उदारा, पश्यन्ती ॥

(३३) गौरी, क्रियाशक्ति, अहङ्कार, तमः, त्रिपुरसुन्दरी ॥

(३४) गंगा, इडा ॥

(३५) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रिया-शक्तिप्रधाना मायाशक्ति अर्थात् जडशक्तिस्वरूपा योगमाया + इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्ति, त्रिपुर सुन्दरी ॥

(३६) कारण ॥

(३७) स्वर, उदात्त, दीर्घ तारा, परा ॥

(३८) तमः, चन्द्र, यमुना, गौरी ॥

(३९) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्ति-प्रधाना चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, काली ।

(४०) महाकारण, एकमेवाऽद्वितीयम् ॥

(४१) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महा-माया, चन्द्रमण्डल, महाकाली, ललनाचक्र, कैवल्य ॥

❋ द्वितीयचित्र रहस्य ❋

भूमिष्ठावस्था—रजोगुणवृद्धि, अविद्याप्रधान-गति, अवच्छिन्नगति, विलोमगति, विषमगति, दक्षिणावर्त पिङ्गला, वामावर्त इडा अर्थात् देवयान पितृयान में विषस्वरूप रजोगुणात्मक सूर्य तथा अमृतस्वरूप चन्द्र की गति, पिङ्गला और इडा नाड़ी में रजस्तमोगुणात्मिका अविद्याशक्ति की गति, इडा पिङ्गला सुषुम्नानाडिस्वरूपा गंगा यमुना व सरस्वती का प्रवाह, ग्रन्थिविभाग, अविद्यासंग से जीव का स्थूल देहात्मबोध, अज्ञानावस्था, अधम, तामस, शूद्रत्वावस्था, कलियुग, द्वैतबोध अन्योन्याभाव, पूर्णविस्मृति जड़बोध, संसारगति अपरा-गति, कर्म, मोहरात्रि, ज्ञानचक्षु निमीलित स्वर्गद्वार आवृत ॥

चित्र परिचय

तृतीयचित्र-प्रथम दीक्षा

(१) सहस्रार, सूर्यमण्डल, ब्रह्मरन्ध्र, वैकुण्ठ, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परं ब्रह्म, महाकाल, सत्, चित्, आनन्द ॥

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप पर ब्रह्म, महाकाल, सत्, ॥

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्ययकोष, अग्निमण्डल, ब्रह्मद्वार, परंपद, रुद्रग्रन्थि, त्रिवेणी, सुदर्शनचक्र भ्रामरीगुहा, दिव्यचक्षु, गवाक्षमण्डल ॥

(४) तामससत्त्वात्मक चित्तरूपीशिव, म, इतरलिङ्ग, काल, साक्षी, प्रणव, सोऽहं, तत् ॥

(५) सरस्वती ॥

(६) मायाचक्र, चन्द्रमण्डल, स्वः, स्वर्ग, स्वर्ग-द्वार, विष्णुग्रन्थि, त्रिकुटी, कालचक्र, द्यावाभूमि, दशमद्वार ॥

(७) गंगा, इडा ॥

(८) तमः, म, साम, शिव, प्राज्ञ, चन्द्र ॥

(९) सत्त्वगुणात्मक, अहङ्काररूपी विष्णु, अ, वाणलिङ्ग, ईश्वर, नियन्तृ, हंसः, ओं ॥

(१०) विशुद्धाख्य, आनन्दमयकोष, भुवः, मर्त्य, ॥

(११) सत्त्व, अ, ऋक्, विष्णु, विश्व, अग्नि ॥

(१२) अनाहत, विज्ञानमयकोष, ईश्वर, नियन्तृ ॥

(१३) रजः, उ, यजुः, ब्रह्मा, तैजस, सूर्य ॥

(१४) मणिपूर, मनोमयकोष, भूः, पाताल, सूर्यमण्डल, जीव, नियम्य, तामिस्र ॥

(१५) स्वाधिष्ठान, प्राणमयकोष, अन्धतामिस्र ॥

(१६) तमोगुणात्मिका आवरणशक्तिरूपा अविद्या ॥

(१७) वामावर्त, इडा, पितृयान, तमः, चन्द्र, प्रकृति ॥

(१८) मूलाधार, अन्नमयकोष, ब्रह्मग्रन्थि, रौरव ॥

(१९) राजसत्त्वात्मक मनोरूपी ब्रह्मा, उ, स्वयम्भूलिङ्ग, जीव ॥

(२०) आधारचक्र ॥

(२१) सुषुम्ना ॥

(२२) शुद्धसत्त्वात्मिका पराबुद्धिरूपा ज्ञान-

शक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति (अर्थात्) चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया, तारा ॥

(२३) सूक्ष्म ॥

(२४) मात्रा, मध्यमा ॥

(२५) रजः, सूर्य, सरस्वती ब्राह्मी ॥

(२६) दक्षिणावर्त, पिङ्गला, देवयान, रजः, सूर्य, पुरुष ॥

(२७) रजोगुणात्मिका विक्षेपशक्तिरूपा अविद्या ॥

(२८) स्थूल ॥

(२९ ब्राह्मी, इच्छाशक्ति, मन, रजः, काली ॥

(३०) व्यञ्जन, पश्यन्ती ॥

(३१) वैष्णवी, ज्ञानशक्ति, बुद्धि, सत्त्व, तारा ॥

(३२) गौरी, क्रियाशक्ति, अहङ्कार, तमः, त्रिपुरसुन्दरी ॥

(३३) सत्त्व, अग्नि, गंगा वैष्णवी ॥

(३४) यमुना, पिङ्गला ॥

(३५) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रिया-शक्तिप्रधाना मायाशक्ति (अर्थात्) जडशक्तिस्वरूपा योगमाया + इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्ति, त्रिपुरसुन्दरी ॥

(३६) स्वर, परा ॥

(३७) कारण ॥

(३८) तमः, चन्द्र, यमुना, गौरी ॥

(३६) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्ति-प्रधाना चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, काली ॥

(४०) महाकारण, एकमेवाऽद्वितीयम् ॥

(४१) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महा-माया, महाकाली, चन्द्रमण्डल, ललनाचक्र, कैवल्य ॥

❋ तृतीय चित्र रहस्य ❋

चत्तु वा क्रमदीक्षा, शक्तिसंचार, समगति, भूचरीमुद्रा, पश्वाचार, राजस, मध्यम, वैश्यत्वा-वस्था, जाग्रत्सुषुप्तावस्था, कर्मयोग, कर्म, विचार, कलियुग (अर्थात्) एक पाद धर्म व तीन पाद अधर्म "कलौ नामैव केवलं" नाम–ओं (अर्थात्) हंसः + सोऽहं ॥ धर्म चेतन शक्ति, अधर्म अचेतन शक्ति, अर्थात् ब्रह्मशक्ति व मायाशक्ति॥

---

* चित्र परिचय *

चतुर्थचित्र–द्वितीयदीक्षा

(१) सहस्रार, सूर्यमण्डल, ब्रह्मरन्ध्र, वैकुण्ठ, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परंब्रह्म, महाकाल, सत्, चित्, आनन्द ॥

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, तुर्यातीत, सत्, ॥

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्मयकोष, अग्निमण्डल, ब्रह्मद्वार, परंपद, रुद्रग्रन्थि, तुर्यगा, द्वारिका। त्रिवेणी, सुदर्शनचक्र, गवाक्षमण्डल, भ्रामरीगुहा, दिव्यचक्षु।

(४) तामससत्त्वात्मक चित्तरूपी शिव, म, इतरलिङ्ग, शब्दब्रह्म, काल, साक्षी, प्रणव, सोऽहं, तत्।

(५) अथर्वण, अयमात्मा ब्रह्म ।

(६) सरस्वती ॥

(७) निषाद ॥

(८) मायाचक्र, चन्द्रमण्डल, स्वः, स्वर्ग, स्वर्गद्वार, पदार्थभावना, विष्णु, वा हृदयग्रन्थि, वृन्दावन। कालचक्र, द्यावाभूमि, दशमद्वार, त्रिकुटी, ॥

(९) धैवत ॥

(१०) तमः, म, साम, शिव, प्राज्ञ, चन्द्र, तत्त्वमसि ॥

(११) सत्त्वगुणात्मक अहङ्काररूपो विष्णु, ईश्वर, नियन्तृ, अ, वाणलिङ्ग, हंसः, ओं ॥

(१२) विशुद्धाख्य, आनन्दमयकोष, भुवः मर्त्य, असंसक्ति ॥

(१३) पिङ्गला, यमुना ॥

(१४) रजः, उ, यजुः, ब्रह्मा, तैजस, सूर्य, अहं ब्रह्मास्मि ॥

(१५) पञ्चम ॥

(१६) अनाहत, विज्ञानमयकोष, ईश्वर, नियन्तृ, सत्त्वापत्ति ॥

(१७) रजोगुणात्मिका विक्षेपशक्तिरूपा अविद्या ॥

(१८) मध्यम ॥

(१९) सत्त्व, अ, ऋक्, विष्णु, विश्व, अग्नि, प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म ॥

(२०) दक्षिणावर्त, पिङ्गला, देवयान, रजः, सूर्य, पुरुष ॥

(२१) मणिपूर, मनोमयकोष, सूर्यमण्डल,

भूः, पाताल, जीव, नियम्य, तनुमानसा, तामिस्र, गोकुल ॥

(२२) गान्धार ॥

(२३) स्वाधिष्ठान, प्राणमयकोष, अन्धतामिस्र, विचारणा ॥

(२४) ऋषभ ॥

(२५) मूलाधार, अन्नमयकोष, ब्रह्मग्रन्थि, रौरव, शुभेच्छा ॥

(२६) राजससत्त्वात्मक मनोरूपी ब्रह्मा, जीव, उ, स्वयम्भूलिङ्ग ॥

(२७) षड्ज ॥

(२८) आधारचक्र ॥

(२९) सुषुम्ना ॥

(३०) शुद्धसत्त्वात्मिका पराबुद्धिरूपा ज्ञान शक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति (अर्थात्) चेतनशक्ति स्वरूपा भोगमाया, तारा ॥

(३१) सूक्ष्म ॥

(३२) मात्रा, मध्यमा, अनुदात्त, ह्रस्व, मुदारा ॥

(३३) रजः, सूर्य, सरस्वती, ब्राह्मी ॥

(३४) ब्राह्मी, इच्छाशक्ति, मन, रजः, काली ॥

(३५) स्थूल ॥

(३६) सत्त्व, अग्नि, गंगा, वैष्णवी, विद्याशक्ति॥

(३७) वैष्णवी, ज्ञानशक्ति, बुद्धि, सत्त्व, तारा ॥

(३८) व्यञ्जन, स्वरित, प्लुत, उदारा, पश्यन्ती ॥

(३९) गौरी, क्रियाशक्ति, अहङ्कार, तमः, त्रिपुरसुन्दरी ॥

(४०) वामावर्त, इडा, पितृयान, तमः, चन्द्र, प्रकृति ॥

(४१) तमोगुणात्मिका आवरणशक्तिरूपा-अविद्या ॥

(४२) इडा, गंगा ॥

(४३) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रिया-शक्तिप्रधाना मायाशक्ति (अर्थात्) जडशक्तिस्वरूपा योगमाया + इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्ति, त्रिपुरसुन्दरी ॥

(४४) स्वर, परा, उदात्त, दीर्घ, तारा,

(४५) तमः, चन्द्र, यमुना, गौरी ॥

(४६) कारण ॥

(४७) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्ति-प्रधाना चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, काली ॥

(४८) महाकारण, एकमेवाऽद्वितीयम् ॥

(४६) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, चन्द्रमण्डल, महाकाली, ललनाचक्र, कैवल्य ॥

❋ चतुर्थ चित्र रहस्य ❋

विलोमगति, ब्रह्मग्रन्थिभेद, सूर्यमण्डलभेद, संस्कार, अभिषेक, उपनयन, सावित्रीमन्त्रदीक्षा, वेदारम्भ, उपकुर्वाण(बालब्रह्मचर्य्य)प्रकाशब्रह्मचर्य्य, दक्षिणाचार, वीराचार, चांचरीमुद्रा, सावित्री, वा हंसमन्त्रजप, ओङ्कारोच्चारण, अकारात्मकऋग्वेदोच्चारण, शाक्त, कौल, श्रोत्रिय, अपरागति, कर्म, धारणा, जडवत्, वितर्कावस्था, जाग्रत्स्वप्नावस्था, क्षत्रियत्वावस्था, द्वापरयुग, श्रीकृष्णचैतन्यावतार, आदिलीला, मुक्तवेणी, दक्षिणायन, कृष्णागति, कर्मयोग, आरुरुक्षुः, प्रातःसन्ध्या, पितृतर्पण, "उत्तिष्ठत" द्वापर (अर्थात्) दोपादधर्म व. दोपाद अधर्म, महारात्रि, देवासुरसंग्राम, (अर्थात्) दैवीशक्ति व आसुरीशक्ति का संग्राम (अर्थात्) रजस्तमोगुणात्मिका विक्षेप व आवरणशक्तिरूपा अविद्याशक्ति तथा सत्त्वगुणात्मिका विद्याशक्ति का संग्राम, तमोगुणत्याग सालोक्यमुक्ति ॥

* चित्र परिचय *

पञ्चमचित्र–तमोगुण प्रत्याहृत

(१) सहस्रार, सूर्यमण्डल, ब्रह्मरन्ध्र, वैकुण्ठ, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परंब्रह्म, महाकाल, सत्, चित्, आनन्द ॥

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, तुर्यातीत, सत् ॥

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्मयकोष, अग्निमण्डल, ब्रह्मद्वार, परंपद, रुद्रग्रन्थि, तुर्यगा, द्वारिका, त्रिवेणी, सुदर्शनचक्र, भ्रामरीगुहा, दिव्यचक्षु, गवाक्षमण्डल ॥

(४) तामससत्त्वात्मक चित्तरूपी शिव, म, इतरलिङ्ग, शब्दब्रह्म, काल, साक्षी, प्रणव, सोऽहं, तत् ॥

(५) अथर्वण, अयमात्मा ब्रह्म ॥

(६) सरस्वती ॥

(७) मायाचक्र, चन्द्रमण्डल, स्वः, स्वर्ग, स्वर्गद्वार, विष्णुग्रन्थि, बृन्दावन, कालचक्र, द्यावाभूमि, दशमद्वार, त्रिकुटी, ॥

(८) पिङ्गला, यमुना ॥

(९) तमः, म, साम, शिव, प्राज्ञ, चन्द्र, तत्त्वमसि ॥

(१०) सत्त्वगुणात्मक अहङ्काररूपी विष्णु, अ, वाणलिङ्ग, ईश्वर, नियन्तृ, हंसः, ओं ॥

(११) विशुद्धाख्य, आनन्दमयकोष, भुवः, मर्त्य, ॥

(१२) रजः, उ, यजुः, ब्रह्मा, तैजस, सूर्य, अहं ब्रह्मास्मि ॥

(१३) अनाहत, विज्ञानमयकोष, ईश्वर, नियन्तृ ॥

(१४) रजोगुणात्मिका विक्षेपशक्तिरूपा अविद्या ॥

(१५) दक्षिणावर्त, पिङ्गला, देवयान, रजः, सूर्य, पुरुष ॥

(१६) मणिपूर, मनोमयकोष, सूर्यमण्डल, भूः, पाताल, जीव, नियम्य, तामिस्र, गोकुल ॥

(१७) स्वाधिष्ठान, प्राणमयकोष, अन्धतामिस्र ॥

(१८) मूलाधार, अन्नमयकोष, रौरव ॥

(१९) राजससत्त्वात्मक मनोरूपी ब्रह्मा, उ, स्वयंभूलिङ्ग, जीव ॥

(२०) आधारचक्र ॥

(२१) सुषुम्ना ॥

(२२) शुद्धसत्त्वात्मिका पराबुद्धिरूपा ज्ञान-शक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति (अर्थात्) चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया, तारा ॥

(२३) सूक्ष्म ॥

(२४) मात्रा, मध्यमा ॥

(२५) रजः, सूर्य, सरस्वती, ब्राह्मी ॥

(२६) ब्राह्मी, इच्छाशक्ति, मन, रजः, काली ॥

(२७) वैष्णवी, ज्ञानशक्ति, बुद्धि, सत्त्व, तारा ॥

(२८) स्थूल ॥

(२९) सत्त्वगुणात्मिका विद्या ॥

(३०) व्यञ्जन, पश्यन्ती ॥

(३१) गौरी, क्रियाशक्ति, अहङ्कार, तमः, त्रिपुरसुन्दरी ॥

(३२) सत्त्व, अग्नि, गंगा, वैष्णवी ॥

(३३) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रिया-शक्तिप्रधाना मायाशक्ति (अर्थात्) जडशक्तिस्वरूपा योगमाया + इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्ति, त्रिपुरसुन्दरी ॥

(३४) स्वर, परा ॥

(३५) तमः, चन्द्र, यमुना, गौरी ॥

(३६) कारण ॥

(३७) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्तिप्रधाना चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, काली ॥

(३८) महाकारण, एकमेवाऽद्वितीयम् ॥

(३९) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, महाकाली, चन्द्रमण्डल, ललनाचक्र, कैवल्य ॥

❋ पञ्चम चित्र रहस्य ❋

अकारात्मक ऋग्वेदोच्चारित, उकारात्मक यजुर्वेदोच्चारण, प्रातः सन्ध्या, तथा ब्रह्मोपसना समाप्त, मध्याह्नसन्ध्या व विष्णु उपासना प्रारम्भ, पितृतर्पण समाप्त, ऋषितर्पणप्रारम्भ, प्रथमदण्डत्याग, द्वितीयदण्ड ग्रहण, तमोगुण का त्याग, चांचरीमुद्रा, आनन्दब्रह्मचर्य्य ॥

---

* चित्र परिचय *

षष्ठ चित्र—रजोगुण प्रत्याहृत

(१) सहस्त्रार, सूर्य्यमण्डल, वैकुण्ठ, ब्रह्मरन्ध्र, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परंब्रह्म, महाकाल, सत्, चित्, आनन्द,

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, तुर्यातीत, सत् ॥

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्मयकोष, अग्निमण्डल, ब्रह्मद्वार, परंपद, रुद्रग्रन्थि, तुर्यगा, द्वारिका, दिव्यचक्षु, त्रिवेणी, सुदर्शनचक्र, गवाक्षमण्डल, भ्रामरीगुहा ॥

(४) तामससत्त्वात्मक चित्तरूपी शिव, म, इतरलिङ्ग, शब्दब्रह्म, काल, साक्षी, प्रणव, सोऽहं, तत् ॥

(५) अथर्वण, अयमात्मा ब्रह्म ॥

(६) सरस्वती ॥

(७) मायाचक्र, चन्द्रमण्डल, स्वः, स्वर्ग, स्वर्गद्वार, विष्णुग्रन्थि, वृन्दावन, त्रिकुटी, दशमद्वार, कालचक्र, द्यावाभूमि ॥

(८) तमः, म, साम, शिव, प्राज्ञ, चन्द्र, तत्त्वमसि ॥

(९) सत्त्वगुणात्मक अहङ्काररूपी विष्णु, अ, वाणलिङ्ग, ईश्वर, नियन्तृ, हंसः, ओं ॥

(१०) विशुद्धाख्य, आनन्दमयकोष, भुवः, मर्त्य ॥

(१०) अनाहत, विज्ञानमयकोष, ईश्वर, नियन्तृ ॥

(१२) मणिपूर, मनोमयकोष, सूर्यमण्डल, भूः, पाताल, जीव, नियम्य, तामिस्र, गोकुल ॥

(१३) स्वाधिष्ठान, प्राणमयकोष, अन्धतामिस्र ॥

(१४ मूलाधार, अन्नमयकोष, रौरव ॥

(१५) राजससत्त्वात्मक मनोरूपी ब्रह्मा, उ, स्वयम्भूलिङ्ग, जीव ॥

(१६) आधारचक्र ॥

(१७) सुषुम्ना ॥

(१८) शुद्धसत्त्वात्मिका पराबुद्धिरूपा ज्ञानशक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति (अर्थात्) चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया, तारा ॥

(१६)सूक्ष्म ॥

(२० मात्रा, मध्यमा ॥

(२१) रजः, सूर्य, सरस्वती, ब्राह्मी ॥

(२२) ब्राह्मी, इच्छाशक्ति, मन, रजः, काली ॥

(२३) वैष्णवी, ज्ञानशक्ति, बुद्धि, सत्त्व, तारा ॥

(२४) गौरी, क्रियाशक्ति, अहङ्कार, तमः, त्रिपुरसुन्दरी ॥

(२५) व्यञ्जन, पश्यन्ती ॥

(२६) सत्त्व, अग्नि, गंगा, वैष्णवी,

(२७) स्थूल ॥

(२८) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रिया-शक्तिप्रधाना मायाशक्ति (अर्थात्) जडशक्तिस्वरूपा योगमाया + इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्ति, त्रिपुरसुन्दरी ॥

(२९) स्वर, परा ॥

(३०) तमः, चन्द्र, यमुना, गौरी ॥

(३१) कारण ॥

(३२) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्ति-प्रधाना चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, काली ॥

(३३) महाकारण, एकमेवाऽद्वितीयम् ॥

(३४) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, महाकाली, ललनाचक्र, कैवल्य ॥

❋ षष्ठ चित्र—रहस्य ❋

उकारात्मक यजुर्वेदोच्चारित, मकारात्मक सामवेदोच्चारण, मध्याह्नसन्ध्या तथा विष्णूपासनासमाप्त, सायंसंध्या व रुद्रोपासनाप्रारम्भ, देवतर्पणसमाप्त, ऋषितर्पणप्रारम्भ, द्वितीयदण्डत्याग, तृतीयदण्डग्रहण, रजोगुणप्रत्याहृत, रजोगुणात्मिका अविद्याशक्ति तथा सत्त्वगुणात्मिका विद्याशक्ति की एकात्मता, चन्द्रसूर्यसमागम, विषामृतसंयोग, अगोचरीमुद्रा, त्रेतायुग, कालरात्रि, चैतन्यब्रह्मचर्य्य, त्रेतायुग (अर्थात्) तीनपाद धर्म व एकपाद अधर्म ॥

चित्र परिचय

सप्तमचित्र-सत्त्वगुण प्रत्याहृत

(१) सहस्त्रार, सूर्यमण्डल, ब्रह्मरन्ध्र, वैकुण्ठ, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परंब्रह्म. महाकाल, सत्, चित्, आनन्द ॥

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, तुर्यातीत सत् ॥

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्ययकोष, अग्निमण्डल, ब्रह्मद्वार, परंपद, रुद्रग्रन्थि, तुर्यगा, द्वारिका, त्रिवेणी, सुदर्शनचक्र, दिव्यचक्षु, गवाक्षमण्डल, भ्रामरीगुहा॥

(४) तामससत्त्वात्मक चित्तरूपी शिव, म, इतरलिङ्ग, शब्दब्रह्म, काल, साक्षी, प्रणव, सोऽहं, तत् ॥

(५) अथर्वण, अयमात्मा ब्रह्म ॥

(६) इडा, असी ॥

(७) सुषुम्ना, गंगा, अविमुक्तवाराणसी ॥

(८) मायाचक्र, चन्द्रमण्डल, स्वः, स्वर्ग, स्वर्गद्वार, बृन्दावन, त्रिकुटी, कालचक्र, द्यावाभूमि, दशमद्वार ॥

(९) विशुद्धाख्य आनन्दमयकोष, भुवः मर्त्य ॥

(१०) अनाहत, विज्ञानमयकोष ।

(११) मणिपूर, मनोमयकोष, सूर्यमण्डल, भूः, पाताल, गोकुल ॥

(१२) स्वाधिष्ठान, प्राणमयकोष ॥

(१३) मूलाधार, अन्नमयकोष ॥

(१४) राजससत्त्वात्मक मनोरूपी ब्रह्मा, उ, स्वयम्भूलिङ्ग, जीव ॥

(१५) आधार चक्र ॥

(१६) सुषुम्ना ॥

(१७) शुद्धसत्त्वात्मिका पराबुद्धिरूपा ज्ञान-शक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति (अर्थात्) चेतनशक्ति स्वरूपा भोगमाया, तारा ॥

(१८) माया, मध्यमा ॥

(१९) रजः, सूर्य, सरस्वती, ब्राह्मी ॥

(२०) सूक्ष्म ॥

(२१) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रिया-

शक्तिप्रधाना मायाशक्ति (अर्थात्) जडशक्तिस्वरूपा योगमाया + इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्ति, त्रिपुरसुन्दरी ॥

(२२) वरुणा, पिङ्गला ॥

(२३) स्वर, परा ॥

(२४) कारण ॥

(२५) तमः, चन्द्र, यमुना, गौरी ॥

(२६) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्ति-प्रधाना चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, काली ॥

(२७) महाकारण, एकामेवाऽद्वितीयम् ॥

(२८) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, महाकाली, चन्द्रमण्डल, ललनाचक्र, कैवल्य ॥

❁ सप्तम चित्र रहस्य ❁

मकारात्मक सामवेदोच्चारित, सायंसंध्या व रुद्र-उपासनासमाप्त, ऋषितर्पणसमाप्त, तृतीयदण्डत्याग, प्राणत्याग, रजोगुणत्याग, अविद्यासंगत्याग, स्थूल-देहत्याग, कर्मकाण्ड व प्रवृत्तिमार्गत्याग, संसारत्याग,

विष्णु वा हृदयग्रन्थिभेद, शिवशक्तिसमागम, उत्तरायण, शुक्ला गति, युक्तवेणी, पूर्णाभिषेक, स्पर्शदीक्षा, कुलीन, नवजीवन, सात्त्विक, उत्तम, सायुज्यमुक्ति, वानप्रस्थ, गायत्रीमन्त्रदीक्षा, अजपाजप, सोऽहं-मन्त्रजप, प्रणवोच्चारण, दिव्याचार, खेचरीमुद्रा, विरजाहोम, सत्त्वगुणप्रत्याहृत, चन्द्रमण्डलभेद, जीव ब्रह्मकी एकता, कारणशरीर में गति, परागति, तत्त्वगति, अकर्म, योगारूढ, युक्तावस्था, ब्राह्मणत्वावस्था, ज्ञानावस्था, ध्यानावस्था, सिद्धावस्था, प्रलय, काशीप्राप्ति, शैव, "जाग्रत", उन्मत्तवत्, तपश्चर्य्या, मध्यलीला, विशिष्टाद्वैत, प्रध्वंसाभाव, ब्रह्मदण्डग्रहण, अथवा गुरु के आदेशानुसार समावर्तनान्तर गार्हस्थ्याश्रम, ज्ञानयोग, सत्ययुग (अर्थात्) चतुष्पाद धर्म, वामाचार, मायानिद्रा का अवसान, प्रातरुत्थान, संसारस्वप्नभंग, अरुणोदय, लोहितवर्ण, ज्ञानचक्षुउन्मीलित, स्वर्गद्वार, अपावृत, ब्राह्ममुहूर्त, उषायात्रा, जडबोधाभाव, चित्सत्ता की उपलब्धि, ज्ञान, सत्त्वगुण में गति, नैष्ठिक वा स्वरूप ब्रह्मचर्य्य, जाग्रतावस्था ॥

---

* चित्र परिचय *

अष्टमचित्र—सम्प्रज्ञात वा सविकल्पसमाधि

(१) सहस्रार, सूर्यमण्डल, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परंब्रह्म, ब्रह्मरन्ध्र, वैकुण्ठ, महाकाल, सत्, चित्, आनन्द ॥

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, परमात्मा, तुर्यातीत, सत् ॥

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्मयकोष, अग्निमण्डल, ब्रह्मद्वार, परंपद, बिन्दु, तुर्य्यगा, गंगोत्री, द्वारिका, सुदर्शनचक्र, त्रिवेणी, दिव्यचक्षु, गवाक्षमण्डल, भ्रामरीगुहा, शुद्धसत्त्वात्मकचित्तरूपी ब्रह्म, तपः ॥

(४) नाद ॥

(५) मायाचक्र, चन्द्रमण्डल, स्वः, स्वर्ग, स्वर्गद्वार, हरिद्वार, बृन्दावन, मन्दाकिनी, पदार्थभावना, कालचक्र, त्रिकुटी, दशमद्वार, द्यावाभूमि ॥

(६) सत्त्व, (परासत्त्व) विश्व, अ, ऋक्, ॥

(७) विशुद्धाख्य, भुवः, मर्त्य, अलकनन्दा, असंसक्ति, जनः ॥

(८) राजससत्त्व, (अतिसत्त्व) तैजस, उ, यजुः

(९) अनाहत, सत्त्वापत्ति, महः ॥

(१०) मणिपूर, भूः, पाताल, भोगवती, गोकुल, तनुमानसा, स्वः ॥

(११) तामससत्त्व, (सत्त्व) प्राज्ञ, म साम ॥

(१२) स्वाधिष्ठान, विचारणा, भुवः ॥

(१३) मूलाधार, शुभेच्छा, भूः ॥

(१४) आधारचक्र ॥

(१५) सुषुम्ना ॥

(१६) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्ति-प्रधाना चित्शक्तिस्वरूपा महामाया, काली, जीवात्मा, ओं, सोहं ॥

(१७) षड्ज ॥

(१८) ऋषभ ॥

(१९) गान्धार ॥

(२०) मध्यम ॥

(२१) पञ्चम ॥

(२२) धैवत ॥

(२३) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रिया-शक्तिप्रधाना मायाशक्ति (अर्थात्) जडशक्तिस्वरूपा योगमाया, त्रिपुरसुन्दरी ॥

(२४) निषाद ॥

(२५) शुद्धसत्त्वात्मिका पराबुद्धिरूपा ज्ञानशक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति (अर्थात्) चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया, तारा ॥

(२६) महाकारण, एकमेवाऽद्वितीयम् ॥

(२७) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, महाकाली, चन्द्रमण्डल, ललनाचक्र, गोमुखी, कैवल्य ॥

❋ अष्टम चित्र रहस्य ❋

शुद्धसत्त्वात्मिका पराबुद्धिरूपा ज्ञानशक्ति-प्रधाना ब्रह्मशक्ति अर्थात् चेतनशक्तिस्वरूपा भोग-माया स्वस्थान में प्रत्याहृत तथा उस भोग माया के संग से ब्रह्मका जीवत्व व संसार भ्रम का अवसान, स्वरूपावस्थिति, ब्राह्मीस्थिति, परमपदलाभ, सत्त्व-गुणत्याग, गुणातीत, तुर्य्यावस्था, ब्रह्मत्वावस्था, योगावस्था, मुक्तावस्था, शुद्धज्ञानावस्था, अन-वच्छिन्न ओंकार की गति, अद्वैतबोध सन्यास, भक्तियोग, वैष्णव, अन्तलीला, पिशाचवत्, प्रध्वं-साभाव, "प्राप्य वरान् निबोधत" सम्प्रज्ञात वा सविकल्पसमाधि, सहजावस्था, बौद्ध, शुद्धसत्त्व में स्थिति, सूर्य्योदय, शुक्लवर्ण, अग्निमण्डल भेद, शाम्भवी मुद्रा, रुद्रग्रन्थिभेद, सारूप्यमुक्ति, प्रभास-यज्ञ, पूर्णाहुति, ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः॥

——— ———

चित्र परिचय

नवम चित्र–असम्प्रज्ञात वा निर्विकल्प समाधि

(१) सहस्रार, सूर्य्यमण्डल, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परंब्रह्म, ब्रह्मरन्ध्र, महाकाल, सत्, चित्, आनन्द, वैकुण्ठ ॥

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, तुर्य्यातीत, सत् ॥

(३) आज्ञाचक्र ॥

(४) मायाचक्र ॥

(५) विशुद्धाख्य ॥

(६) अनाहत ॥

(७) मणिपूर ॥

(८) स्वाधिष्ठान ॥

(९) मूलाधार ॥

(१०) आधारचक्र ॥

(११) सुषुम्ना ॥

(१२) एकमेवाऽद्वितीयम्, महाकारण ॥

(१३) विशुद्धसत्त्वात्मिका व इच्छाज्ञान-क्रियात्मिका चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, चन्द्र-मण्डल, महाकाली, ललनाचक्र, कैवल्य ॥

❋ नवम चित्र रहस्य ❋

विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म के साथ त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्ति-स्वरूपा महामाया की एकता, चित् और चिदाभास एकात्मक, जीवनमुक्ति, मोक्षयोग, तुर्य्यातीत, अत्यन्ताभाव, द्वैताद्वैतविवर्जितम्, असम्प्रज्ञात वा निर्विकल्पसमाधि, जीवात्मा व परमात्मा की एकता, अवधूत, विज्ञानावस्था, परमहंस, परिव्राजक, विकर्म, विशुद्धज्ञानावस्था ॥

प्रथमदीक्षा अर्थात् चक्षुदीक्षा वा शक्तिसंचार का परिणाम।

—o—

मूलाधार चक्र से मणिपूर चक्र तक गति समाप्त।

—o—

सूर्यमण्डलभेद, ब्रह्मग्रन्थिभेद, जाग्रत्स्वप्नावस्था, क्षत्रियस्वावस्था, कर्मयोग, हंसमन्त्रजप, सावित्रीमन्त्रोच्चारण, ब्रह्मचर्य्याश्रम, तमोगुणत्याग, सालोक्यमुक्ति, अशुद्धसत्त्वात्मिका विद्याशक्ति का सङ्ग ग्रहण, शाक्त, श्रोत्रिय, धारणावस्था, आरुरुक्षुः "उत्तिष्ठत"।



द्वितीयदीक्षा अर्थात् मन्त्रदीक्षा वा शक्तिरुत्थान का परिणाम।

—o—

मणिपूर से मायाचक्र तक गति समाप्त।

—o—

चन्द्रमण्डलभेद, विष्णुग्रन्थिभेद, जाग्रतावस्था, ब्राह्मणस्वावस्था, ज्ञानयोग, सोहंमन्त्रजप, गायत्री-

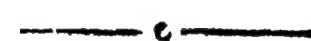
पुरश्चरण, वानप्रस्थाश्रम, रजोगुणत्याग, सायुज्य-मुक्ति, सत्त्वगुणात्मिका विद्याशक्ति के संग में गति, शैव, कौल, ध्यानावस्था, योगारूढ़, "जाग्रत"।



तृतीयदीक्षा अर्थात् स्पर्शदीक्षा वा शिवशक्ति-समागम का परिणाम।



मायाचक्र से आज्ञाचक्र तक गति समास।



अग्निमण्डलभेद, रुद्रग्रन्थिभेद, तुर्य्यावस्था, ब्रह्मत्वावस्था, भक्तियोग, ब्राह्मीस्थिति, विश्राम, सन्यासाश्रम, सत्त्वगुणत्याग, सारूप्यमुक्ति, शुद्ध-सत्त्वात्मिका पराविद्या के संग में स्थिति, "वैष्णव, कुलीन, सम्प्रज्ञातसमाधि, योगी, "प्राप्य वरान्निबोधत"।

